# सूर्यबाला

नारी जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालनेवाली गौरवमई रचनाकार सूर्यबाला का जन्म 15 अक्टूबर 1944 को वाराणसी के एक कायस्थ परिवार में हुआ। उनका पूरा नाम सूर्यबाला वीरप्रतापसिंह श्रीवास्तव है। सूर्यबाला के पिता का नाम श्री वीरप्रतापसिंह और माता का नाम श्रीमती केशरकुमारी है। पिता जिला विद्यालय के शिक्षा विभाग में उच्चाधिकारी थे, तो माता एक आदर्श गृहिनी थी। लेखिका के समूचे व्यक्तित्व पर उनके माता–पिता के संस्कारों का प्रभाव पड़ा हुआ है। सूर्यबाला की बहन वीरबाला एक प्रसिद्ध साहित्यकार होने के नाते उसका भी प्रभाव लेखिका के साहित्य लेखन पर पड़ा हुआ दिखाई देता है।

सूर्यबाला जी की शिक्षा–दीक्षा वाराणसी में ही संपन्न हुई। इन्होंने एम. ए. (हिंदी) के पश्चात पीएच. डी. की उपाधि प्राप्त की। शिक्षा के बाद एक वर्ष बनारस विश्वविद्यालय में तथा दो वर्ष वाराणसी के महाविद्यालय में व्याख्याता पद पर अध्यापन का कार्य किया। तत्पश्चात पारिवारिक दायित्व को निभाने के लिए नौकरी छोड़ दी और गृहस्थी के साथ पूरी तरह से लेखन कार्य में जुट गई। उन्होंने हिंदी साहित्य की विधाओं पर लेखनी चलाकर हिंदी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

**कहानी संग्रह–** 'एक इंद्रधनुष जुबेदा के नाम', 'दिशाहीन मैं', 'थाली भर चांद', 'मुंडेर पर', 'गृह प्रवेश', ' मानुष गंध', 'यामिनी कथा' आदि।

**उपन्यास–** 'मेरे संधिपत्र', 'सुबह की इंतजार तक', 'अग्निपंखी', 'दीक्षांत' आदि।

**व्यंग्य साहित्य–** 'अजगर करे न चाकरी', 'धृतराष्ट्र टाइम्स', 'देश सेवा के अखाड़े में', 'भगवान ने कहा था'।

**बाल साहित्य–** 'झगड़ा निपटरक दफ़्तर', ' कुछ अदद जाहिलों के साथ' आदि।

इस साहित्यिक योगदान को लेकर लेखिका को सितंबर 1996 के 'प्रियदर्शनी' पुरस्कार से तथा उपन्यास 'कात्यायनी' के संवाद के लिए 'घनश्यामदास सराफ' पुरस्कार से सम्मानित किया गया है। लेखिका की कहानियाँ धर्मयुग, सारिका, ज्ञानोदय आदि पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं।

'निर्वासित' यह कहानी 'एक इंद्रधनुष्य जुबेदा के नाम' इस कहानी संग्रह से ली गई है। इस कहानी में लेखिका ने वृद्ध माता–पिता की पीड़ा और बेटों द्वारा हुई उनकी उपेक्षा को अभिव्यक्त किया है। बेटे और बहू द्वारा हो रही उपेक्षा ही माता–पिता को निर्वासित बना देती है। हमेशा पुरानी पीढ़ी नई पीढ़ी को जितना समझ आती है उससे भी बहुत कम हम नई पीढ़ी के लोग पुरानी पीढ़ी के लोगों को समझ पाते हैं। कहानी के केंद्र में रिटायर बाबूजी और माँ जी हैं। रिटायर होने पर बड़े बेटे राजेन ने माँ और बाबूजी को पत्र लिखकर अपने पास रहने के लिए बुलाया तब बाबूजी गाँव का अपना मकान किराए पर देकर राजेन के यहाँ चले जाते हैं। लेकिन वहाँ पल–पल बहू से उन्हें अपमानित होना पड़ता है और बेटे की उपेक्षा को भी सहना पड़ता है। बूढ़े माता –पिता की बेटों द्वारा होने वाली उपेक्षा ही इस कहानी की मूल संवेदना है।



Scanned by CamScanner

7

# निर्वासित

– सूर्यबाला

झुलसाती लू के साथ दुहरे होते युक्लिप्ट्स और केजुरीना के पेड़, दरकती गुलाब की क्यारियाँ और सूखे पत्तों से ढका लॉन....इस मौसम में वैसे भी मन एक अजीब–भी ऊब, बल्कि मनहूसियत से भर जाता है। कमरे से बरामदा, बरामदे से खिड़की और खिड़की से आती बही सूखी हरहराती हवा ..... उन्होंने खिड़की का शीशा बंद कर दिया, परदे खिसका दिये, फिर थोड़ी देर शीशे से टिकी खड़ी रहीं....सब कुछ उजाड़, वीरान। माहौल की मनहूसियत से उदासी और भी गहरा गयी, और ऐसी दोपहर एक–दो हों तो काटी भी जा सकती है, पर हफ्तों, महीनों, सालों.....

बहुत पहले भी जेठ–बैसाख की दोपहरी तो ऐसी ही उजाड़ हुआ करती थी, पर तब इतनी उदास और सपाट कभी नहीं लगी। या यों कहें कि इतना वक्त ही किसे रहता था ! बच्चे छोटे थे, सारा समय उनके पीछे–पीछे ही भाग–दौड़, चीख–पुकार में बीत जाता। पलकें दो घड़ी झपक लेने को तरस जाती। बच्चों को सुलाने के लिए 'ढाका, बंगाला कौआ' की कहानी कहते–कहते वह खुद सो जाती और छोटा धीरू बड़े भाई के इशारे पर सिर के नीचे पड़ी माँ की कोहनी खिसकाकर दबे पांव तपती दोपहरी में खिसक जाता। पता जब चलता, जब महरी उन्हें मड़ैया पर फालसे तोड़ते देखकर कान पकड़कर उनके सामने हाजिर कर देती.... तब तक वैर बिसहने लगती। आंगन और बरामदे में पानी का छिड़काव, सुराही, झंझर भरना, बाबूजी के लिए सौफ, काली मिर्च की ठंडाई पीसना.....

वह पोथी निकालकर चश्मा टटोलने लगी। एक–दो पाठ गुनगुनाये। थोड़ी देर बीती, उठीं, लू के थपेड़ों में ही अलगनी पर सूखती अपनी साड़ी और जंपर उठा लायीं। उन्हें धीमे–धीमे तह करती रही। तह करके रैक पर रख दिया। अब ? बटुए से माला निकाली और चुपचाप बिस्तर पर बैठी फेरती रहीं। बैठे–बैठे कमर दुखती–सी लगी, तो लेट गयी। जाने कब झपकी–सी आ गयी। थोड़ी देर में ही चौंककर आंखें खुल गयीं। लगा, काफी दुपहरी कट चुकी होगी। चार तो जरूर बजते होंगे। उठना चाहिए। बेटे–बहू के कमरे के दरवाजे उढके हुए थे। कूलर की घर्र–र–र सारे घर की



खामोशी को मथ रही थी। दबे पांव बैठक की ओर आयीं। आरामकुर्सी पर उठंगे–उठंगे वह सो रहे थे। एक किताब हाथों के सहारे पेट पर टिकी थी। चश्मा थोड़ा नाक के नीचे खिसक आया था। उन्होंने चुपचाप किताब मेज़ पर रख दी, चश्मा उतारने लगीं कि उनकी नींद खुल गयी। "तुम ? सोयीं नहीं क्या?"

"नहीं, थोड़ी झपकी आ गयी थी। लेकिन गर्मी बहुत है, नींद खुल गयी।" थोड़ा ठहरकर पूछा– " जगा दिया तुम्हें ?"

"नहीं, मैं भी पढ़ते–पढ़ते यों ही झपक गया था। सचमुच बड़ी गर्मी है।"

"शरबत लाऊँ बनाकर, पियोगे?"

"शरबत ? नहीं–नहीं ..... अच्छा, ऐसा करो, चाय बना दो। तब तक राजेन और बहू भी जग जाएंगे।"

वह दबे पांव ही रसोई में गयी। स्टोव में तेल नहीं था। बोतल से डालने लगीं, तो जाने कैसे बोतल फिसल गयी। चारों ओर मिट्टी का तेल फैल गया। आवाज सुनकर 'कौन है ?' कहती रीमा रसोई तक चली आयी। वह अपराधिनी –सी, दयनीय बनी जल्दी–जल्दी कपड़े से तेल सुखा रही थीं।

"ओह ! मांजी, आप !"

उन्होंने खिसियानी–सी हंसी हंसते हुए कहा– "मन में आया, जरा चाय बना दूं.....तुम्हारे बाबूजी जग गये थे। सोचा, जब तक बनेगी, तुम दोनों भी जग जाओगे तब तक ....."

"ओह, इतनी दोपहर में चाय कौन पियेगा ? जरा शाम तो होने देती ! फिर जमना आकर बनाता ही है, आप बेकार ही तकलीफ करने लगती हैं न !"

"चार से ऊपर हो रहे थे, मन भी उचाट था।" वह स्वर धीमा करते हुए बोलीं।

"खूब ! तो आप चाय बनाने लगीं.....!" उसने केवल हंसकर कहा था। वह भी बुरा लगने लायक कोई शब्द नहीं, पर उनका मन रोने–रोने–सा होने लगा।

कमरे में राजेन शायद पूछ रहा है। बहू फिक्क से हंसती हुई उन्हें बता रहीं है– "मांजी है ! जाने इतनी दोपहर में उहें चाय बनाने की क्या सूझी....और बुढ़ापे में हाथ तो चलता नहीं, बोतल लुढ़क गयी मिट्टी के तेल की .... !"

"तो उन्हें समझा दो.....और अगर चाय जल्दी पीना चाहती हों, तो जमना को कह दें, जल्दी आ जाया करे।"

"लो, तुम समझते हो, मैं उन्हें किचेन में काम करने को कहती हूँ ? उनके जाने से तो काम और बढ़ जाता है, पर ये बूढ़े लोग...."

बूढ़े लोग ! उनकी आंखें भरभरा आयीं। अभी तो यहाँ आने के पहले तक सारा काम ही संभालती थी....बाबूजी का नाश्ता, खाना, कपड़े धोना तक.....और बाबूजी ने कभी शिकायत नहीं की कि अब तुमसे काम ठीक नहीं होता। दाल–सब्जी में भी न कभी पानी ज्यादा, न नमक कम– जमना की तरह। सोचा, चलकर बैठक में उन्हीं के पास बैठूं। चाय बनाने का उत्साह तो समाप्त हो गया

Scanned by CamScanner

था। बैठक की ओर बढी कि कानों में राजेन और वहू के खिलखिलाने की आवाज आयी। वह झेंपकर पूजावाले कमरे की ओर बढ़ गयी। जाते–जाते राजेन का धीमा स्वर कानों में पड़ा– "प्रेम–शेम कुछ नहीं, अकेली बोर फील करती होंगी,तो बाबूजी के पास जाकर बैठ जाती होंगी।"

"वाह, जैसे मैंने देखा न हो ! मांजी के मना करने पर भी पिताजी अपने कपड़े खुद धो लेते हैं। चाय की खाली प्याली उनके मांगने पर भी किचेन में रख आते हैं। दिन में अधिक नहीं तो चार–पाँच बार दवा के लिए पूछते हैं– खायी कि नहीं ? खतम हो गयी हो, तो ले आऊँ। उनका वस चले, तो ....."

बात एक भरपूर कटाक्ष पर समाप्त हो गयी।

चाय की खाली प्याली रखकर वह चुपचाप सिर झुकाये बैठक की ओर मुड़ गये। सोचा, जमना से मांजी के बारे में पूछें। फिर रूक गये। लौटकर उसी मुद्रा में झुके हुए अखबार लेकर बैठ गये। इतना अखबार उन्होंने जीवन में कभी नहीं पढ़ा था जितना पिछले ढाई सालों में। रिटायर होने के डेढ़ साल बाद ही यहाँ आ गये थे दोनों। डेढ़ वर्षों तक सौ रुपये महीने भेजने के बाद अचानक राजेन का पत्र मिला था। उसमें उसने अकेले उतनी दूर रहते माँ–बाबूजी को अपने पास ही रहने के लिए बुलाया था। मकान को किराये पर उठा देने की बात भी लिखी थी। वैसे किराये वाली बात गौण थी, मुख्य तो यही थी कि माँ को अकेले सारा काम करना पड़ता है, यहाँ हम लोगों को भी चिंता बनी रहती है। इतनी दूर से समय–कुसमय पहुँचना भी मुश्किल रहता है, सरकारी नौकरी ठहरी.....

अड़ोस–पड़ोस वालों ने भी कहा– "ठीक ही लिखा है। अब यह उम्र आराम की है। यहाँ तो सौदा–सुलुफ और जो कुछ थोड़ा बहुत राशन लगता है, बाबूजी खुद ही लाते हैं। वहाँ तो बेटा इतना बड़ा अफसर है, हर काम के लिए चपरासी, अरदली हाथ बांधे खड़े रहेंगे। वहू भी सुशील है। इतनी बार यहाँ आयी, कभी ऊँचे बोल नहीं सुने। राज करोगी, राजेन की माँ ! अफसरों की तो पुलाव–कचौड़ी से नीचे बात ही नहीं होती ! और फिर सबसे बड़ी बात कि उसे इतना ख्याल है, नहीं तो आजकल के बेटे ....."

लेकिन मुँहफट बूढ़ी दरोगानी ने कहा था– "सब कचौड़ी पकौड़ी एक तरफ और अपना सुराज एक तरफ ! वहाँ तो अफसरी कायदे से रहना होगा। लेकिन हाँ, आराम तो होगा ही। और फिर बुलाने पर न जाना भी...."

इन दोनों ने खुद भी साथ–साथ और अलग–अलग बहुत कुछ सोचा था। घर छोड़ने की बात से दोनों के मन में एक–सी हूक उठी थी। पर तर्क सभी अकाट्य थे। सचमुच वहू का स्वभाव परखा हुआ है और फिर परतंत्रता कैसी ? हिचक कैसी ? अपनी ही कोख में जनमी औलाद हैं, उन्हें तो चार बात भी कह दें, तो जवान नहीं खोल सकते। लाख अफसर हों, माँ–बाप के सामने बच्चे ही हैं।

"रिजर्वेशन हो गया।" आंगन में आकर बोले थे, तो जैसे किसी ने कलेजे



पर हथौड़ा मारा हो। सामान बंधने लगे, चीजें बंटने लगीं, सिल–बट्टे, सूप–चलनी, अलगनी, अलमारियाँ कद्दूकस, जन्माष्टमी पर बजने वाले घंटा–घड़ियाल, कृष्ण–जन्म के झूले, रामनवमी पर पूजा जानेवाला तुलसी का चौरा....कुछ नहीं ले जाना है। राजेन ने लिखा है– 'अम्मा से कहिए, सब कुछ न उठा लायें, यहाँ उन्हें किसी वात की तकलीफ न होगी।' सचमुच छोड़ दिया सब कुछ। रामेश्वरम् से लाया, तीर्थ का तांवे का लोटा भर धीमे से रख लिया, घंटा–घड़ियाल और कन्हैयाजी का पालना, बस.....बाबूजी ने भी देखकर मना नहीं किया आखिर उनका भी तो कितना कुछ जुड़ा था इस लोटे और पालने के साथ। कैसे वे दोनों साथ–साथ नहाये थे और भगवान के सामने हाथ जोड़कर, जो कुछ उसने भरा पूरा दिया था, उसके लिए गद्‌गद् स्वर में कृतज्ञता अर्पित की थी। रामेश्वरम् जाने के दो महीने पहले ही छोटे रनधीर को नौकरी लगी थी।

स्टेशन पर राजेन खुद ही आया था, दो चपरासियों के साथ। प्लेट फॉर्म पर फैले थैले, बंडलों, गठरियों को देखकर एक बार तो खीजा। फिर परेशान–सा, संयत स्वर में बोला– "आपको तो मना किया था। बाबूजी, अम्मा को समझ नहीं, पर आप तो मना कर सकते थे। सौ बरस पुरानी सड़ी–गली चीजों का भला क्या होगा यहाँ !

वह झेंपकर हंसे थे– "अरे भई, क्या बताऊँ ! इन औरतों को तो तुम जानते हो ही, इतना मना किया, पर .... अब समझा तक ही तो सकता हूँ ... खैर, एक तरफ कहीं रख दी जायेगी। हें–हें–हें ....'

चपरासी ने उनका कमरा बताया। पर सामान खुलने लगा, तो बहू ने दांतो–तले उंगली दबा ली– "ओह मांजी, नौकर देखेंगे, तो क्या कहेंगे ! इसके पहले यहाँ जितने साहब आये, सब अंग्रेज या ऐग्लो–इंडियन थे।" वह हकबकी टुकुर–टुकुर देखती रही। रीमा जल्दी से रामेश्वरम् वाला लोटा छिपा आयी। वह उसे मना न कर पायीं।

"भई वाह, मांजी तो चलता–फिरता म्यूजियम साथ लायी है !" रीमा ने हंसकर फिकरा कसा।

पूरी–की–पूरी गठरियाँ टांड पर चढ़ा दी गयी, सो भी स्टोर वाले पर कि कोई उतार भी न सके। दो–एक बार उनके बारे में पूछकर वह चुप हो गयी थी। तभी उन्हें लगा था, जान–बूझकर उन्होंने घर पर जितना कुछ छोड़ा था, अनजाने उससे कहीं ज्यादा छूट गया है, जो जीवन भर शायद न मिल सकेगा।

बाबूजी शायद साहसी थे। अड़ोस–पड़ोस में मन रमाने की कोशिश करते। सुबह–सुबह छड़ी लेकर घूमने निकल जाते। समय मिलता, तो मांजी को बुलंद आवाज़ में बुलाते–"क्या कर रही हो ? अब यहाँ तुम्हें कौन से काम का बहाना है। चलो, पाइ किया जाए।"

एकाध बार शुरू में उन्होंने राजेन को भी अधिकार भरे स्वर में बुलाने की कोशिश की, पर राजेन ने एक अजीब बड़प्पन भरी हंसी हंसकर टाल दिया–

Scanned by CamScanner

"आप कीजिए, मुझे तो अभी मीटिंग में जाना है। फिर मेरे लिए बहुत समय पड़ा है पाठ–पूजा के लिए।"

एक दिन बहू ने बड़े मीठे ढंग से आकर समझाया– "मांजी, जरा बाबूजी से कहिएगा, इतनी जोर से पाठ न किया करें। वहाँ घर की बात और थी, यहाँ सब आफिसर्स ही रहते हैं। और फिर भगवान तो सब जगह है। देखिए न, कबीरदासजी ने भी कहा है– ता चढ़ि मुल्ला बांग दे क्या बहिरा हुआ खुदाय। आप और बाबूजी मन–मन में पूजा कर लिया कीजिए, ये गुस्सा होते हैं।"

वह बहू के दर्शन–ज्ञान और अकाट्य तर्क के सामने निरुत्तर थीं। पूरी आज्ञाकारिता के साथ उन्होंने उसे आश्वासन दिया कि भविष्य में वे दोनों इसका ध्यान रखेंगे। अकेले में स्वयं को भी समझाया– ठीक तो कहती है, इन लोगों को तो कोई उज्र नहीं, पर आने–जाने वाले जरूर हंसते होंगे। कहा भी है, जैसा देश वैसा भेस। मन और भी हलका हो गया, जब देखा, राजेन पिताजी के साथ लॉन में चाय पी रहा है और घर–जायदाद वगैरह के बारे में सलाह ले रहा है।

चाय खत्म कर उठते–उठते राजेन ने जरा झिझकते हुए नपे तुले स्वर में कहा– "बाबूजी, शाम को मेरे दोस्त वगैरह आते हैं न, तो प्लीज आप अंदर आ जाया कीजिए। असल में उन्हें ड्रिंक्स वगैरह चाहिए होती हैं, स्मोक भी करना चाहते हैं। आप बुजुर्ग ठहरे, आपके सामने झिझकते हैं।" और जल्दी–जल्दी उनके चेहरे पर आयी प्रतिक्रिया देखे बिना जमना को आवाज़ दी– " कार साफ करो, फौरन! बाहर जाना है।"

"मांजी, हम बाहर जा रहे हैं। जमना बेबी को घुमाकर लौटे, तो दूध दिलवा देंगी,. बस। खाना हम बाहर ही खायेंगे।"

कार सर्र–से जा चुकी थी। थोड़ी देर वह उड़ती धूल को देखती रहीं, फिर एकदम अपने में लौट आयीं। बाबूजी उसी तरह लॉन में सिर झुकाये बैठे थे।

"वे लोग तो बाहर गये। " सुनने पर भी चेहरे पर कोई भाव नहीं आया। गोद में पड़ी किताब उलटते–पलटते रहे।

"कौन सी किताब है... पोथी हैं?"

"नहीं, रामतीर्थ–ग्रंथावली।"

किसी सुनसान घाटी में जैसे कोई अस्फुट ध्वनि गुंजी हो और उसके रेशे–रेशे चारों तरफ बिखर गये हों, ऐसे ही उन दिनों के अहसासों में एक साथ कुछ बिखरा हुआ था। थोड़ी देर चुप रहीं, फिर एकदम सहज होते हुए बोलीं– "क्या बनाऊँ...कटहल बनाती हूँ आज, तुम्हें बहुत पसंद है।"

"न–न, अब पचता नहीं।"

"तो ? बस खीर और सादी सब्जी?"

"खीर ? नहीं। जब बहू और राजेन रहें, तब बनाना।'

शब्द थोड़े से थे, पर अर्थ गहरे और विस्तृत। वह चुप हो गयीं। घर पर थे, तो हर चौथे–पांचवें हाथ की बनी मोटी रोटियाँ और आलू–बैंगन की सब्जी।



बहुत खुश होते तो मखाने की खीर। बाद में दो रोटियाँ अपने लिए भी उलट उसी थाली में बैठ जाती। तब तक वह हाथ धो रहे होते।

शाम वैसी ही गुमसुमी–सी बीती। अंधेरा होने पर मन में घुमड़ता कुछ और भी गहरा आया। एकाएक उनके पास जाकर खड़ी हो गयी और अटकती आवाज़ में कह गयी– "सालों हो गये, एक बार घर चलते न !"

"घर ?" उनकी आंखों में एक चमक आयी और बुझ गयी– "बहू तो पूरा किराये पर उठा दियो है ! क्यों ? क्या बात है?"

"बात ? बात कुछ नहीं, बहुत दिनों से घर छूटा ही है, बस।"

"लेकिन कुछ दिनों को चलने से फायदा ...?;"

"हाँ।" एक गहरी उसांस उस खामोशी में उतरती चली गयी– "क्या फायदा....!"

सुबह–सुबह ही रनधीर के आने का तार मिला था। दस बजे राजेन उसे स्टेशन से लेकर लौटा। पैर छूने के लिए माँ के घुटने तक हाथ जरा झुकाकर हंसते हुए बोला–"अच्छी तो हो, अम्मा ! चलो, भैया की सरकारी नोकरी में हुकुम चलाने का उनका काफी भार तुमने हलका कर दिया होगा !"

वह जोर से हो–हो करके हंसते हुए बताने लगे– "अरे, पूछो मत ! दिन भर लोगों की भीड़ घेरे रहती है। साहब–साहब कहते जबान सूखती है। उनके सामने तो जमना और चपरासियों तक की अकड़ देखने लायक होती है। एक तो आजकल छुट्टी गया है, फिर भी दो–चार दिन भर ....." वह उत्साह में भर बोले जा रहे थे।

राजेन सिगरेट की राख झाड़ते हुए भाई से कह रहा था– सब ऊपरी ठाट है। अंदर ठाले रहते हैं। अब तो असिस्टेंट भी पूरे घाघ मिलते हैं। कड़ी नजर रखते हैं कस्टमर्स पर। सरकारी नौकरी में तो बस छोटे ओहदों पर फायदा है। ऊपरी ठाट और अंदरूनी हालात में कितना फर्क है, तुम सोच भी नहीं सकते। अब यही देखो, बेबी को कुछ सालों बाद नैनीताल के कॉन्वेंट में डालना चाहता था, पर दम ही नहीं!"

भोजन के बाद रनधीर जाने लगा, तो राजेन ने रोका– "बैठो, बातें करेंगे। हम देर से ही सोते हैं।" फिर थोड़ी देर रूककर, उन दोनों को देखकर ठंडे लहजे में बोला– "आप लोग चाहें तो बैठें, बाबूजी !"

उन्होंने तुरंत उठते हुए कहा– "नहीं–नहीं, तुम सब बातें करो। आज काफी थकावट महसूस हो रही है।" एक झूठी जम्हाई लेकर वह उठ आये। पीछे–पीछे वह भी आ गयी। दोनों को एक साथ लगा, शेष तीनों ने एक राहत–भरी मुक्ति महसूस की है।

बरामदे से चुपचाप गुजरते हुए वह सोच रही थी– नींद तो अभी घंटों नहीं आयेगी, तब तक क्या करेंगी ? क्यों न बाबूजी को भी कमरे में ही बुला लें, थोड़ी देर बैठें, फिर चले जायेंगे। उन्हें मुड़ते देखकर टोका– "अभी सोओगे ?"

"नहीं तो।"

Scanned by CamScanner

"तो बैठो न कमरे में ही।"

"कमरे में ? नहीं चलता हूँ ..... रात काफी हो गयी है। थक भी गया हूँ। इस समय कमरे में बैठना ....चलूं, जरा अखबार आज ठीक से नहीं पढ़ा।"

सब कुछ कहा–अनकहा, जाना–समझा था, फिर भी वह ऐसा प्रस्ताव रख गयी थी बाबूजी के सामने। अपनी चलती तुरंत समझ में आ गयी। बहू–बेटों के पास से थकान का बहाना करके आना और फिर घुल–घुल कर बतियाना...

एक दिन बहू राजेन से खिलखिलाती कह रही थी– "पिताजी तो मांजी को बिलकुल मॉडर्न बनाने पर तुल गये हैं ! आज उन्हें शिमला पैक्ट के फायदे नुकसान समझा रहे थे !"

"तो आपको क्या ऑब्जेक्शन है ?" राजेन ने मुसकराकर पूछा। थिएटर देख रही हूँ ! अभी देखो, नाऊ शी इज परफैक्टली ऑलराइट, लेकिन पिताजी को चैन कहाँ ? जब भी मौका मिलेगा– 'कमजोरी लगती हो तो ताकतवाली दवा एकाध शीशी और ला दूं .....घबराहट के लिए वह कौन–सी होमियोपैथी की दवा बतायी थी डॉक्टर बैनरजी ने ?' मांजी निहाल हो जाती है।" फिर भौंहों की कमान चढ़ाती राजेन से बोली– "सच, तुमने अपने पिताजी से कुछ नहीं सीखा.....कुछ नहीं!"

"शैतान की बच्ची...!" राजेन एक प्यार–भरी चपत लगाकर मुसकरा पड़ा।

एक–दो दिन बाद डॉक्टर के यहाँ जाते समय जब उन्होंने तबीयत का हाल पूछा वह एकदम चिड़चिड़ा पड़ी उन पर। स्तब्ध से अपलक देखते रहे उन्हें और चुपचार चले गये। वह लेटी आंखों पर कुहनी रखे रोती रहीं....आखिर उनका क्या कसूर था, क्यों चिड़चिड़ायी वह उन पर !

काफी रात गये उनकी 'गुड नाइट' के शब्द कानों में पड़े। तब तक वे दोनों अलग–अलग पूरी तरह जगे हुए थे। बीच में माला जपते समय या रामतीर्थ ग्रन्थावली पढ़ते समय एकाध झपकी आयी भी, तो उन तीनों के ठहाकों और खिलखिलाहटों से उचट गयी।

सुबह उठने के साथ ही रनधीर ने हंसाना और सबको हंसाना शुरू किया। यह उसकी बचपन की आदत थी। राजेन की तरह गंभीर नहीं, हमेशा का चिविल्ला था। इस समय भी कभी बेबी के हाथ में डॉल छीन कर उसे रूला रहा था, कभी बाबूजी का चश्मा लगाकर पढ़ने की कोशिश कर रहा था, कभी जब वह भाभी को छिपकर देखने गया था, उसके मनोरंजक प्रसंग सुना रहा था। कोई नहीं मिलता, तो जमना से ही उसकी शादी कीं बाबत जानकारी ले रहा था।

"जमना, सुन, तू हनीमून पर जरूर जाना। खर्च की सारी जिम्मेदारी मेरी।"

जमना झेंपता–शर्माता ट्रे उठाकर चला जाता। वह पूजा कर रही थी, तब भी डाइनिंग रूम से आते ठहाके उन्हें कुलबुला जाते, विशेषकर जब बेटों के साथ उनकी भी युक्त हंसी मिली होती। पूजा करते हुए भी मन उन्हीं लोगों पर था। वह ज्यादा खुश और मुक्त लग रहे थे, बेटों की बातों में खूब रस ले रहे थे। राजेन



और रनधीर के मुँह से कई बार 'बाबूजी' संबोधन सुन उनका मन पुलकित हो उठा था। हाथ की माला सालों पहले परिक्रमा करने लगी थी, जब स्कूल से टीम जीतकर आने पर दोनों खेल की बातें बताते–बताते पिता को निहाल कर देते और वह प्रसन्नमन कहते– "शबाश, मेरे शेरो !" फिर ठहाके थम गए। सब शांत हो गया। राजेन ऑफिस चला गया। काफी देर बाद वह कमरे में आये, तो मुसकरा दीं– "आज तो बड़े दिन बाद बेटों से ठट्ठे करते सुना तुम्हें।"

उन्होंने जैसे सुना न हो, ऐसे स्थिर दृष्टि से उन्हें देखा, फिर एक–एक शब्द पर रूकते हुए खिड़की के बाहर देखते कह गए– "सुनो, मैं जा रहा हूँ.. छोटे के साथ।"

"कब ?" एक अप्रत्याशित प्रतिक्रिया उभरी– "कितने दिनों के लिए ?"

"कल। वही रहने के लिए, उसके साथ..."

भयाक्रांत सी वह एकदम से पूछ बैठी– "क्यों ?"

लगा, यह सवाल एक बड़ी चट्टान की तरह उन दोनों पर भरभरा कर गिर पड़ा हो और उनके समेत उनका सब कुछ चकनाचूर हो गया हो।

कठोर संयम से उन्होंने आवेगों की रास खींच ली– "कुछ नहीं, यों ही... काफी दिन तो हो गए यहाँ रहते। थोड़ा घूम–फिर आना चाहिए..."

"मुझे भी तो यहाँ रहते.....!" वह निरतंर असहाय–सी होती जा रही थी।

गले में बहुत कुछ गुटकते हुए धीमे–धीमे बोले– "मैं आ जाऊँगा, तब तुम जाओगी।"

फिर दोनों एकदम चुप, एक–दूसरे को देखते रहें, जैसे आंखे पथरा–कर किसी एक ही दिशा में टिक गयी हों। उन आंखों की अथाह कातरता में बस एक ही सवाल गहराता जा रहा था– हमारा अपराध....?

पहले वह ही संभले– "अब जब दो बेटे हैं, तो एक ही दोनों का खर्च उठाये, ठीक नहीं लगता न ....? है कि नहीं ? ठीक ही सोचा दोनों ने, अभी यहाँ बेबी छोटी है, तुम यहाँ रहोगी। सात आठ महीने बाद छोटी की डिलिवरी होगी. ... फिर तुम वहाँ चली जाओगी छोटे के पास। मैं यहाँ .... तो चलूं ...ऐं ...तुम जरा मेरी कमीजें वगैरह....."

थोड़ी देर बाद वह अखबार लिये फिर सामने खड़े थे– "यही कहने आया था कि मेरी छड़ी रखना मत भूलना, जो हम हरिद्वार से लाये थे। जरा टहल आऊँ न ! बस.....यही कहना था....."

लेकिन वह कुछ कह नहीं सके थे। यूं ही बस, कमरे के बीचो–बीच कुर्सी का सिरा पकड़े खड़े थे ..... कांपती उंगलियों में कसकर पकड़ा हुआ अखबार और आंखों में बाण–बिद्ध क्रौंच –युगल की मूक पीड़ा थी, जिसे देखकर किसी आदिकवि का कोमल हृदय करूणा की अथाह लहरियों में बह चला था ....

माँ निषाद प्रतिष्ठां त्वमगहम शाश्वती महा .....

Scanned by CamScanner

# शेखर जोशी

'नई कहानी' के प्रतिनिधि रचनाकार शेखर जोशी का जन्म सन् 1932 में अलमोड़ा जनपद ओलिया गाँव के पहाड़ी किसान परिवार में हुआ। पिताजी का नाम दामोदर जोशी और माताजी का नाम हरिप्रिया जोशी था। प्रारंभिक शिक्षा देहरादून और अजमेर में हुई। सन् 1955 से 1986 तक इलाहाबाद में सैनिक औद्योगिक प्रतिष्ठान में नौकरी की। अपने बुजुर्गों से सुनी कहानियों का प्रभाव उनके साहित्य पर देखा जाता है। 'नई कहानी' को गाँव से जोड़ने का श्रेय शेखर जोशी को जाता है। पहाड़ी क्षेत्र का जीवन संघर्ष, गरीबी, यातना, मजदूरों के हालात, सामाजिक समस्याएँ, धर्म और जाति में जुड़ी रूढ़ियाँ ये सभी उनकी कहानियों के विषय हैं। कोशी का घटवार, बदबू, मेंटल, दाज्यू आदि कहानियों ने शेखर जोशी को कहानीकारों में स्थान दिलाया।

**रचनाएँ** – 'कोशी का घटवार' (1958), 'साथ के लोग' (1978), 'हलवाहा', 'नौरंगी बीमार है' (1998), 'मेरा पहाड़' (1989), 'एक पेड़ की याद', 'प्रतिनिधि कहानियाँ'।

**पुरस्कार** – 1955 में धर्मयुग द्वारा आयोजित कहानी प्रतियोगिता का प्रथम पुरस्कार, महावीर प्रसाद द्विवेदी पुरस्कार, साहित्य भूषण सम्मान, पहाड़ सम्मान, मैथिलीशरण गुप्त सम्मान।

'कोशी का घटवार' शेखर जोशी की प्रसिद्ध कहानी है, इस कहानी में ग्रामीण पहाड़ी परिवेश का दर्शन होता है। कहानी का प्रमुख पात्र गुसांई फौज में नौकरी करता है। नारी पात्रों में प्रमुख पात्र लछमा है। गुसांई लछमा से प्रेम करता है। गुसांई अनाथ है और फौज में जान का भरोसा नहीं इसलिए लछमा के पिता अपनी बेटी का ब्याह गुसांई से नहीं करते। लछमा का व्याह अन्यत्र होता है, एक बच्चा होने के बाद विधवा लछमा अपने मैके में आकर रहने लगती है।

पंद्रह साल फौज में नौकरी करने के पश्चात् गुसांई गाँव में गेहूँ पीसने का घट (पनचक्की) लगाता है। एक दिन लछमा चक्की पर गेहूँ पिसाने आती है तब दोनों की भेंट होती है, दोनों उदास हैं। पूर्वदीप्ति शैली से लेखक ने पुरानी यादों का वर्णन किया है। दोनों पुरानी बातें याद करते हैं। लछमा मैके में आकर रहती है। पिता का निधन होने के बाद चाचा–भतीजे सोचते है कि लछमा अपना हक माँगेगी। तब लछमा कहती है कि मुझे पिताजी के हिस्से का कुछ नहीं चाहिए।



गुसांई और लछमा का एकाकी जीवन चल रहा है। समाज के कारण वह विवाह नहीं कर सके और अब भी एक नहीं हो सकते हैं। उनका मानसिक अंतरद्वंद्व कहानी में प्रस्तुत हुआ है। लछमा ने गगनाथज्यू की कसम खाई थी गुसांई जैसा कहेगा वैसा करेगी। पिता के कारण वह कसम निभा न सकी। गुसांई बच्चे को देखकर सोचता है, मैं तो अकेला हूँ पर लछमा बच्चे वाली है, कसम झूठी पड़ गई तो कोप बच्चे पर न पड़े। इससे गुसांई का लछमा के प्रति अद्वितीय प्रेम प्रकट होता है।

Scanned by CamScanner

गुसाई फौज में लछमा -

# 8

# कोशी का घटवार

— शेखर जोशी

गुसांई का मन चिलम में भी नहीं लगा। सिहल की छाँह से उठकर वह फिर एक बार घट (पनचक्की) के अन्दर गया। अभी खप्पर में एक–चौथाई से भी अधिक गेहूँ शेष था। खप्पर में हाथ डालकर उसने व्यर्थ ही उलटा–पलटा और चक्की के पाटों के वृत्त में फैले हुए आटे को झाडकर एक ढेर बना दिया। बाहर आते–आते उसने फिर एक बार और खप्पर में झांककर देखा, जैसे यह जानने के लिए कि इतनी देर में कितनी पिसाई हो चुकी हैं, परंतु अंदर की मिकदार में कोई विशेष अंतर नहीं आया था। खस्स–खस्स की ध्वनि के साथ अत्यंत धीमी गति से ऊपर का पाट चल रहा था। घट का प्रवेशद्वार बहुत कम ऊंचा था, खूब नीचे तक झुककर वह बाहर निकला। सर के बालों और बाहों पर आटे की एक हलकी सफेद पर्त बैठ गई थी।

खंभे का सहारा लेकर वह बुदबुदाया, "जा, स्साला! सुबह से अब तक दस पंसेरी भी नहीं हुआ। सूरज कहां का कहां चला गया है। कैसी अनहोनी बात....."

बात अनहोनी तो है ही। जेठ बीत रहा है। आकाश में कहीं बादलों का नाम–निशान ही नहीं। अन्य वर्षों अब तक लोगों की धान–रोपाई पूरी हो जाती थी, पर इस साल नदी–नाले सब सूखे पड़े हैं। खेतों की सिंचाई तो दरकिनार, बीज की क्यारियां सूखी जा रही हैं। छोटे नाले–गूलों के किनारे के घट महीनों से बंद हैं। कोसी के किनारे हैं गुसाईं का यह घट। पर इसकी भी चाल ऐसी कि लद्दू घोडे की चाल को मात देती हैं।

चक्की के निचले खंड में छच्छिर–छच्छिर की आवाज़ के साथ पानी को काटती हुई मथानी चल रही थी। कितनी धीमी आवाज! अच्छे खाते–पीते ग्वालों के घर में दही की मथानी इससे ज्यादा शोर करती है। इसी मथानी का वह शोर होता था कि आदमी को अपनी बात नहीं सुनाई देती और अब तो भले नदी पार कोई बोले, तो बात यहां सुनाई दे जाय !



छप्प ..छप्प ..छप्प ..पुरानी फौजी पैंट को घुटनों तक मोड़कर गुसांई पानी की गूल के अंदर चलने लगा। कहीं कोई सूराख–निकास हो, तो बंद कर दे। एक बूंद पानी भी बाहर न जाए। बूंद–बूंद की कीमत है इन दिनों। प्रायः आधा फलांग चलकर वह बांध पर पहुंचा। नदी की पूरी चौड़ाई को घेरकर पानी का बहाव घट की गूल की ओर मोड़ दिया गया था। किनारे की मिट्टी–घास लेकर उसने बांध में एक–दो स्थान पर निकास बंद किया और फिर गूल के किनारे–किनारे चलकर घट के पास आ गया।

अंदर जाकर उसने फिर पाटों के वृत्त में फैले हुए आटे को बुहारकर ढेरी में मिला दिया। खप्पर में अभी थोड़ा–बहुत गेहूँ शेष था। वह उठकर बाहर आया।

दूर रास्ते पर एक आदमी सर पर पिसान रखे उसकी ओर आ रहा था। गुसांई ने उसकी सुविधा का ख्याल कर वहीं से आवाज दे दी, 'हैं हो! यहां लंबर देर में आएगा। दो दिन का पिसान अभी जमा है। ऊपर उमेदसिंह के घट में देख लो।'

उस व्यक्ति ने मुड़ने से पहले एक बार और प्रयत्न किया। खूब ऊंचे स्वर में पुकारकर वह बोला, 'जरूरी है, जी, पहले हमारा लंबर नहीं लगा दोगे?'

गुसांईं होंठों–ही–होठों में मुस्कराया, स्साला कैसे चीखता है, जैसे घट की आवाज़ इतनी हो कि मैं सुन न सकूं ! कुछ कम ऊंची आवाज़ में उसने हाथ हिलाकर उत्तर दे दिया, 'यहाँ जरूरी का भी बाप रखा है, जी! तुम ऊपर चले जाओ!'

वह आदमी लौट गया।

सिहल की छांव में बैठकर गुसांईं ने लकड़ी के जलते कुंदे को खोदकर चिलम सुलगाई और गुड–गुड करता धुआं उड़ाता रहा।

खस्सर–खस्सर चक्की का पाट चल रहा था।

किट–किट–किट–किट खप्पर से दाने गिरानेवाली चिड़िया पाट पर टकरा रही थी।

छिच्छिर–छिच्छिर की आवाज के साथ मथानी पानी को काट रही थी।

और कहीं कोई आवाज़ नहीं। कोसी के बहाव में भी कोई ध्वनि नहीं। रेती–पाथरों के बीच में टखने–टखने तक फैला पानी क्या आवाज़ करेगा ! पानी के गर्भ से निकलकर छोटे–छोटे पत्थर भी अपना सर उठाए आकाश को निहार रहे थे। दोपहरी ढलने पर भी इतनी तेज धूप! कहीं चिरैया भी नहीं बोलती। किसी प्राणी का प्रिय–अप्रिय स्वर नहीं।

सूखी नदी के किनारे बैठा गुसांईं सोचने लगा, क्यों उस व्यक्ति को लौटा दिया? लौट तो वह जाता ही घट के अंदर टच्च पड़े पिसान के थैलों को देखकर। दो–चार क्षण की बातचीत का आसरा ही होता।

Scanned by CamScanner

कभी–कभी गुसांई को यह अकेलापन काटने लगता है। सूखी नदी के किनारे का यह अकेलापन नहीं, जिंदगी–भर साथ देने के लिए जो अकेलापन उसके द्वार पर धरना देकर बैठ गया है, वही। जिसे अपना कह सके, ऐसे किसी प्राणी का स्वर उसके लिए नहीं। पालतू कुत्ते–बिल्ली का स्वर भी नहीं। क्या ठिकाना ऐसे मालिक का, जिसका घर–द्वार नहीं, बीबी–बच्चे नहीं, खाने–पीने का ठिकाना नहीं.....

घुटनों तक उठी हुई पुरानी फौजी पैंट के मोड़ को गुसांई ने खोला। गूल में चलते हुए थोडा भाग भीग गया था। पर इस गर्मी में उसे भीगी पैंट की यह शीतलता अच्छी लगी। पैंट की सलवटों को ठीक करते–करते गुसांई ने हुक्के की नली से मुँह हटाया। उसके होठों में बाएं कोने पर हलकी–सी मुस्कान उभर आई। बीती बातों की याद गुसांई सोचने लगा, इसी पैंट की बदौलत यह अकेलापन उसे मिला है ..... नहीं, याद करने को मन नहीं करता। पुरानी, बहुत पुरानी बातें वह भूल गया है, पर हवलदार साहब की पैंट की बात उसे नहीं भूलती।

ऐसी ही फौजी पैंट पहनकर हवलदार धरमसिंह आया था, लॉन्ड्री की धुली, नोकदार, क्रीजवाली पैंट ! वैसी ही पैंट पहनने की महत्वाकांक्षा लेकर गुसांई फौज में गया था। पर फौज से लौटा, तो पैंट के साथ–साथ जिंदगी का अकेलापन भी उसके साथ आ गया।

पैंट के साथ और भी कितनी स्मृतियां संबद्ध हैं। उस बार की छुट्टियों की बात .....

कौन महीना ? हां, बैसाख ही था। सर पर क्रास खुखरी के क्रेस्ट वाली, काली, किश्तीनुमा टोपी को तिरछा रखकर, फौजी वर्दी वह पहली बार एनुअल–लीव पर घर आया, तो चीड वन की आग की तरह खबर इधर–उधर फैल गई थी। बच्चे–बूढे, सभी उससे मिलने आए थे। चाचा का गोठ एकदम भर गया था, ठसाठस्स। बिस्तर की नई, एकदम साफ, जगमग, लाल–नीली धारियोंवाली दरी आंगन में बिछानी पडी थी लोगों को बिठाने के लिए। खूब याद है, आंगन का गोबर दरी में लग गया था। बच्चे–बूढे, सभी आए थे। सिर्फ चना–गुड या हल्द्वानी के तंबाकू का लोभ ही नहीं था, कल के शर्मीले गुसांई को इस नए रूप में देखने का कौतूहल भी था। पर गुसांई की आंखें उस भीड़ में जिसे खोज रही थीं, वह वहाँ नहीं थी।

नाले पार के अपने गांव से भैंस के कटया को खोजने के बहाने दूसरे दिन लछमा आई थी। पर गुसांई उस दिन उससे मिल न सका। गांव के छोकरे ही गुसांई की जान को बवाल हो गए थे। बुढ्ढे नरसिंह प्रधान उन दिनों ठीक ही कहते थे, आजकल गुसांई को देखकर सोबनियां का लड़का भी अपनी फटी घेर की टोपी को तिरछी पहनने लग गया है।.... दिन–रात बिल्ली के बच्चों की



तरह छोकरे उसके पीछे लगे रहते थे, सिगरेट–बीडी या गपशप के लोभ में।

एक दिन बड़ी मुश्किल से मौका मिला था उसे। लछमा को पात–पतेल के लिए जंगल जाते देखकर वह छोकरों से कांकड के शिकार का बहाना बनाकर अकेले जंगल को चल दिया था। गांव की सीमा से बहुत दूर, काफल के पेड़ के नीचे गुसांई के घुटने पर सर रखकर, लेटी–लेटी लछमा काफल खा रही थी। पके, गदराए, गहरे लाल–लाल काफल। खेल–खेल में काफलों की छीना–झपटी करते गुसांई ने लछमा की मुठ्ठी भींच दी थी। टप–टप काफलों का गाढा लाल रस उसकी पैंट पर गिर गया था। लछमा ने कहा था, "इसे यहीं रख जाना, मेरी पूरी बांह की कुर्ती इसमें से निकल आएगी।"वह खिलखिलाकर अपनी बात पर स्वयं ही हंस दी थी।

पुरानी बात – क्या कहा था गुसांई ने, याद नहीं पड़ता ..तेरे लिए मखमल की कुर्ती ला दूंगा, मेरी सुवा! या कुछ ऐसा ही।

पर लछमा को मखमल की कुर्ती किसने पहनाई होगी – पहाड़ी पार के रमुवां ने, जो तुरी–निसाण लेकर उसे ब्याहने आया था?

'जिसके आगे–पीछे भाई–बहिन नहीं, माई–वाप नहीं, परदेश में बंदूक की नोक पर जान रखनेवाले को छोकरी कैसे दे दें हम?' लछमा के बाप ने कहा था।

उसका मन जानने के लिए गुसांई ने टेढे–तिरछे बात चलवाई थी।

उसी साल मंगसिर की एक ठंडी, उदास शाम को गुसांई की यूनिट के सिपाही किसनसिंह ने क्वार्टर–मास्टर स्टोर के सामने खड़े–खड़े उससे कहा था, 'हमारे गांव के रामसिंह ने जिद की, तभी छुट्टियां बढ़ानी पड़ीं। इस साल उसकी शादी थी। खूब अच्छी औरत मिली है, यार! शक्ल–सूरत भी खूब है, एकदम पटाखा! बडी हंसमुख है। तुमने तो देखा ही होगा, तुम्हारे गांव के नजदीक की ही है। लछमा–लछमा कुछ ऐसा ही नाम है।'

गुसांई को याद नहीं पडता, कौन–सा बहाना बनाकर वह किसनसिंह के पास से चला आया था, रम–डे था उस दिन। हमेशा आधा पैग लेनेवाला गुसांई उस दिन पेशी करवाई थी – मलेरिया प्रिकॉशन न करने के अपराध में। सोचते–सोचते गुसांई बुदबुदाया, 'साला एडजुटेन्ट!'

गुसांई सोचने लगा, उस साल छुट्टियों में घर से बिदा होने से एक दिन पहले वह मौका निकालकर लछमा से मिला था।

'गंगनाथज्यू की कसम, जैसा तुम कहोगे, मैं वैसा ही करूंगी!' आंखों में आँसू भरकर लछमा ने कहा था।

वर्षों से वह सोचता आया है, कभी लछमा से भेंट होगी, तो वह अवश्य कहेगा कि वह गंगनाथ का जागर लगाकर प्रायश्चित जरूर कर ले। देवी–देवताओं

Scanned by CamScanner

की झूठी कसमें खाकर उन्हें नाराज करने से क्या लाभ? जिस पर भी गंगनाथ का कोप हुआ, वह कभी फल–फूल नहीं पाया। पर लछमा से कब भेंट होगी, यह वह नहीं जानता। लडकपन से संगी–साथी नौकरी–चाकरी के लिए मैदानों में चले गए हैं। गांव की ओर जाने का उसका मन नहीं होता। लछमा के बारे में किसी से पूछना उसे अच्छा नहीं लगता।

जितने दिन नौकरी रही, वह पलटकर अपने गांव नहीं आया। एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन का वालंटियरी ट्रांसफर लेनेवालों की लिस्ट में नायक गुसांईसिंह का नाम ऊपर आता रहा – लगातार पंद्रह साल तक।

पिछले बैसाख में ही वह गांव लौटा, पंद्रह साल बाद, रिजर्व में आने पर। काले बालों को लेकर गया था, खिचड़ी बाल लेकर लौटा। लछमा का हठ उसे अकेला बना गया।

आज इस अकेलेपन में कोई होता, जिसे गुसांईं अपनी जिंदगी की किताब पढ़कर सुनाता! शब्द–शब्द, अक्षर–अक्षर कितना देखा, कितना सुना और कितना अनुभव किया है उसने .....

पर नदी किनारे यह तपती रेत, पनचक्की की खटर–पटर और मिहल की छाया में ठंडी चिलम को निष्प्रयोजन गुडगुडाता गुसांईं। और चारों ओर अन्य कोई नहीं। एकदम निर्जन, निस्तब्ध, सुनसान –

एकाएक गुसांईं का ध्यान टूटा।

पिसान के थैलों को इधर–उधर रखने लगा। काठ की चिड़ियां किट–किट बोल रही थीं और उसी गति के साथ गुसांईं को अपने हृदय की धड़कन का आभास हो रहा था।

घट के छोटे कमरे में चारों ओर पिसे हुए अन्न का चूर्ण फैल रहा था, जो अब तक गुसांईं के पूरे शरीर पर छा गया था। इस कृत्रिम सफेदी के कारण वह वृद्ध–सा दिखाई दे रहा था। स्त्री ने उसे नहीं पहचाना।

उसने दुबारा वे ही शब्द दुहराए। वह अब भी तेज धूप में बोझा सर पर रखे हुए गुसांईं का उत्तर पाने को आतुर थी। शायद नकारात्मक उत्तर मिलने पर वह उलटे पांव लौटकर किसी अन्य चक्की का सहारा लेती।

दूसरी बार के प्रश्न को गुसांईं न टाल पाया, उत्तर देना ही पडा, "यहां पहले ही टीला लगा है, देर तो होगी ही।" उसने दबे–दबे स्वर में कह दिया।

स्त्री ने किसी प्रकार की अनुनय–विनय नहीं की। शाम के आटे का प्रबंध करने के लिए वह दूसरी चक्की का सहारा लेने को लौट पड़ी।

गुसांईं कमर झुकाकर घट से बाहर निकला। मुडते समय स्त्री की एक झलक देखकर उसका संदेह विश्वास में बदल गया था। हताश–सा वह कुछ क्षणों तक उसे जाते हुए देखता रहा और फिर अपने हाथों तथा सिर पर गिरे हुए आटे



को झाड़कर एक–दो कदम आगे बढ़ा। उसके अंदर की किसी अज्ञात शक्ति ने जैसे उसे वापस जाती हुई उस स्त्री को बुलाने को बाध्य कर दिया। आवाज़ देकर उसे बुला लेने को उसने मुँह खोला, परंतु आवाज़ न दे सका। एक झिझक, एक असमर्थता थी, जो उसका मुँह बंद कर रही थी। वह स्त्री नदी तक पहुंच चुकी थी। गुसांईं के अंतर में तीव्र उथल–पुथल मच गई। इस बार आवेग इतना तीव्र था कि वह स्वयं को नहीं रोक पाया, लड़खड़ाती आवाज़ में उसने पुकारा, "लछमा!"

घबराहट के कारण वह पूरे जोर से आवाज़ नहीं दे पाया था। स्त्री ने यह आवाज नहीं सुनी। इस बार गुसांईं ने स्वस्थ होकर पुनः पुकारा, "लछमा!"

लछमा ने पीछे मुड़कर देखा। मायके में उसे सभी इसी नाम से पुकारते थे, यह संबोधन उसके लिए स्वाभाविक था। परंतु उसे शंका शायद यह थी कि चक्कीवाला एक बार पिसान स्वीकार न करने पर भी दुबारा उसे बुला रहा है या उसे केवल भ्रम हुआ है। उसने वहीं से पूछा, "मुझे पुकार रहे हैं, जी?

गुसांईं ने संयत स्वर में कहा, "हां, ले आ, हो जाएगा।"

लछमा क्षण–भर रूकी और फिर घट की ओर लौट आई।

अचानक साक्षात्कार होने का मौका न देने की इच्छा से गुसांईं व्यस्तता का प्रदर्शन करता हुआ मिहल की छांह में चला गया।

लछमा पिसान का थैला घट के अंदर रख आई। बाहर निकलकर उसने आंचल के कोर से मुँह पोंछा। तेज धूप में चलने के कारण उसका मुँह लाल हो गया था। किसी पेड़ की छाया में विश्राम करने की इच्छा से उसने इधर–उधर देखा। मिहल के पेड़ की छाया में घट की ओर पीठ किए गुसांईं बैठा हुआ था। निकट स्थान में दाडिम के एक पेड़ की छांह को छोड़कर अन्य कोई बैठने लायक स्थान नहीं था। वह उसी ओर चलने लगी।

गुसांईं की उदारता के कारण ऋणी–सी होकर ही जैसे उसने निकट आते–आते कहा, "तुम्हारे बाल–बच्चे जीते रहें, घटवारजी! बड़ा उपकार का काम कर दिया तुमने! ऊपर के घट में भी जाने कितनी देर में लंबर मिलता।"

अजात संतति के प्रति दिए गए आशीर्वचनों को गुसांईं ने मन–ही–मन विनोद के रूप में ग्रहण किया। इस कारण उसकी मानसिक उथल–पुथल कुछ कम हो गई। लछमा उसकी ओर देखें, इससे पूर्व ही उसने कहा, "जीते रहे तेरे बाल–बच्चे लछमा! मायके कब आई?"

गुसांईं ने अंतर में घुमड़ती आंधी को रोककर यह प्रश्न इतने संयत स्वर में किया, जैसे वह भी अन्य दस आदमियों की तरह लछमा के लिए एक साधारण व्यक्ति हो।

दाड़िम की छाया में पात–पतेल झाड़कर बैठते लछमा ने शंकित दृष्टि से

Scanned by CamScanner

गुसांई की ओर देखा। कोसी की सूखी धार अचानक जल–प्लावित होकर वहने लगती, तो भी लछमा को इतना आश्चर्य न होता, जितना अपने स्थान से केवल चार कदम की दूरी पर गुसांई को इस रूप में देखने पर हुआ। विस्मय से आंखें फाड़कर वह उसे देखे जा रही थी, जैसे अब भी उसे विश्वास न हो रहा हो कि जो व्यक्ति उसके सम्मुख बैठा है, वह उसका पूर्व–परिचित गुसांई ही है।

"तुम?" जाने लछमा क्या कहना चाहती थी, शेष शब्द उसके कंठ में ही रह गए।

"हां, पिछले साल पल्टन से लौट आया था, वक्त काटने के लिए यह घट लगवा लिया।" गुसांई ने उसकी जिज्ञासा शांत करने के लिए कहा। होठों पर मुस्कान लाने की उसने असफल कोशिश की।

कुछ छडों तक दोनों कुछ नहीं बोले। फिर गुसांई ने ही पूछा, "बाल–बच्चे ठीक हैं?"

आंखें जमीन पर टिकाए, गरदन हिलाकर संकेत से ही उसने बच्चों की कुशलता की सूचना दे दी। जमीन पर गिरे एक दाडिम के फूल को हाथों में लेकर लछमा उसकी पंखुडियों को एक–एक कर निरूद्देश्य तोड़ने लगी और गुसांई पतली सींक लेकर आग को कुरेदता रहा।

बातों का क्रम बनाए रखने के लिए गुसांई ने पूछा, "तू अभी और कितने दिन मायके ठहरनेवाली है?"

अब लछमा के लिए अपने को रोकना असंभव हो गया। टप् – टप् – टप्, वह सर नीचा किए आँसू गिराने लगी। सिसकियों के साथ–साथ उसके उठते–गिरते कंधों को गुसांई देखता रहा। उसे यह नहीं सूझ रहा था कि वह किन शब्दों में अपनी सहानुभूति प्रकट करे।

इतनी देर बाद सहसा गुसांई का ध्यान लछमा के शरीर की ओर गया। उसके गले में चरेऊ (सुहाग–चिह्न) नहीं था। हतप्रभ–सा गुसांई उसे देखता रहा। अपनी व्यवहारिक अज्ञानता पर उसे वेहद झुंझलाहट हो रही थी।

आज अचानक लछमा से भेंट हो जाने पर वह उन सब बातों को भूल गया, जिन्हें वह कहना चाहता था। इन क्षणों में वह केवल–मात्र श्रोता बनकर रह जाना चाहता था। गुसांई की सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि पाकर लछमा आँसू पोंछती हुई अपना दुखडा रोने लगी, "जिसका भगवान नहीं होता, उसका कोई नहीं होता। जेठ–जेठानी से किसी तरह पिंड छुड़ाकर यहां मां की बीमारी में आई थी, वह भी मुझे छोड़कर चली गई। एक अभागा मुझे रोने को रह गया है, उसी के लिए जीना पड़ रहा है। नहीं तो पेट पर पत्थर बांधकर कहीं डूब मरती, जंजाल कटता।"

"यहां काका–काकी के साथ रह रही हो?" गुसांई ने पूछा।

"मुश्किल पड़ने पर कोई किसी का नहीं होता, जी! बाबा की जायदाद



पर उनकी आंखें लगी हैं, सोचते हैं, कहीं मैं हक न जमा लूं। मैंने साफ–साफ कह दिया, मुझे किसी का कुछ लेना–देना नहीं। जंगलात का लीसा ढो–ढोकर अपनी गुजर कर लूंगी, किसी की आंख का कांटा वनकर नहीं रहूँगी।"

गुसांई ने किसी प्रकार की मौखिक संवेदना नहीं प्रकट की। केवल सहानुभूतिपूर्ण दृष्टि से उसे देखता–भर रहा। दाड़िम के वृक्ष से पीठ टिकाए लछमा घुटने मोड़कर बैठी थी। गुसांई सोचने लगा, पंद्रह–सोलह साल किसी की जिंदगी में अंतर लाने के लिए कम नहीं होते, समय का यह अंतराल लछमा के चेहरे पर भी एक छाप छोड़ गया था, पर उसे लगा, उस छाप के नीचे वह आज भी पंद्रह वर्ष पहले की लछमा को देख रहा है।

"कितनी तेज धूप है, इस साल!" लछमा का स्वर उसके कानों में पड़ा। प्रसंग बदलने के लिए ही जैसे लछमा ने यह बात जान–वूझकर कही हो।

और अचानक उसका ध्यान उस ओर चला गया, जहां लछमा बैठी थी। दाडिम की फैली–फैली अधढंकीं डालों से छनकर धूप उसके शरीर पर पड रही थी। सूरज की एक पतली किरन न जाने कब से लछमा के माथे पर गिरी हुई एक लट को सुनहरी रंगीनी में डूबा रही थी। गुसांई एकटक उसे देखता रहा।

"दोपहर तो बीत चुकी होगी," लछमा ने प्रश्न किया तो गुसांई का ध्यान टूटा, "हां, अब तो दो बजनेवाले होंगे," उसने कहा, "उधर धूप लग रही हो तो इधर आ जा छांव में।" कहता हुआ गुसांई एक जम्हाई लेकर अपने स्थान से उठ गया।

"नहीं, यहीं ठीक है," कहकर लछमा ने गुसांई की ओर देखा, लेकिन वह अपनी बात कहने के साथ ही दूसरी ओर देखने लगा था।

घट में कुछ देर पहले डाला हुआ पिसान समाप्ति पर था। नंबर पर रखे हुए पिसान की जगह उसने जाकर जल्दी–जल्दी लछमा का अनाज खप्पर में खाली कर दिया।

धीरे–धीरे चलकर गुसांई गुल के किनारे तक गया। अपनी अंजुली से भर–भरकर उसने पानी पिया और फिर पास ही एक बंजर घट के अंदर जाकर पीतल और अलमुनियम के कुंछ बर्तन लेकर आग के निकट लौट आया।

आस–पास पड़ी हुई सूखी लकडियों को बटोरकर उसने आग सुलगाई और एक कालिख पुती बटलोई में पानी रखकर जाते–जाते लछमा की ओर मुँह कर कह गया, "चाय का टैम भी हो रहा है। पानी उबल जाय, तो पत्ती डाल देना, पुड़िया में पड़ी है।"

लछमा ने उत्तर नहीं दिया। वह उसे नदी की ओर जानेवाली पगडंडी पर जाता हुआ देखती रही।

सड़क किनारे की दुकान से दूध लेकर लौटते–लौटते गुसांई को काफी

Scanned by CamScanner

समय लग गया था। वापस आने पर उसने देखा, एक छः–सात वर्ष का बच्चा लछमा की देह से सटकर बैठा हुआ है।

बच्चे का परिचय देने की इच्छा से जैसे लछमा ने कहा, "इस छोकरे को घडी–भर के लिए भी चैन नहीं मिलता। जाने कैसे पूछता–खोजता मेरी जान खाने को यहां भी पहुंच गया है।"

गुसांई ने लक्ष्य किया कि बच्चा बार–बार उसकी दृष्टि बचाकर मां से किसी चीज के लिए जिद कर रहा है। एक बार झुंझलाकर लछमा ने उसे झिड़क दिया, "चुप रह! अभी लौटकर घर जाएंगे, इतनी–सी देर में क्यों मरा जा रहा है?"

चाय के पानी में दूध डालकर गुसांई फिर उसी बंजर घट में गया। एक थाली में आटा लेकर वह गूल के किनारे बैठा–बैठा उसे गूंथने लगा। मिहल के पेड़ की ओर आते समय उसने साथ में दो–एक बर्तन और ले लिए।

लछमा ने बटलोई में दूध–चीनी डालकर चाय तैयार कर दी थी। एक गिलास, एक एनेमल का मग और एक अलमुनियम के मैसटिन में गुसांई ने चाय डालकर आपस में बांट ली और पत्थरों से बने बेढंगे चूल्हे के पास बैठकर रोटियां बनाने का उपक्रम करने लगा।

हाथ का चाय का गिलास जमीन पर टिकाकर लछमा उठी। आटे की थाली अपनी ओर खिसकाकर उसने स्वयं रोटी पका देने की इच्छा ऐसे स्वर में प्रकट की कि गुसांई ना न कह सका। वह खड़ा–खड़ा उसे रोटी पकाते हुए देखता रहा। गोल–गोल डिबिया–सरीखी रोटियां चूल्हे में खिलने लगीं। वर्षों बाद गुसांई ने ऐसी रोटियां देखी थीं, जो अनिश्चित आकार की फौजी लंगर की चपातियों या स्वयं उसके हाथ से बनी बेडौल रोटियों से एकदम भिन्न थीं। आटे की लोई बनाते समय लछमा के छोटे–छोटे हाथ बडी तेजी से घूम रहे थे। कलाई में पहने हुए चांदी के कडे जब कभी आपस में टकरा जाते, तो खन् – खन् का एक अत्यंत मधुर स्वर निकलता। चक्की के पाट पर टकरानेवाली काठ की चिडियों का स्वर कितना नीरस हो सकता है, यह गुसांई ने आज पहली बार अनुभव किया।

किसी काम से वह बंजर घट की ओर गया और बडी देर तक खाली वर्तन–डिब्बों को उठाता–रखता रहा।

वह लौटकर आया, तो लछमा रोटी बनाकर बर्तनों को समेट चुकी थी और अब आटे में सने हाथों को धो रही थी।

गुसांई ने बच्चे की ओर देखा। वह दोनों हाथों में चाय का मग थामे टकटकी लगाकर गुसांई को देखे जा रहा था। लछमा ने आग्रह के स्वर में कहा, "चाय के साथ खानी हों, तो खा लो। फिर ठंडी हो जाएंगी।"

"मैं तो अपने टैम से ही खाऊंगा। यह तो बच्चे के लिए .." स्पष्ट कहने



में उसे झिझक महसूस हो रही थी, जैसे बच्चे के संबंध में चिंतित होने की उसकी चेष्टा अनाधिकार हो।

"न–न, जी! वह तो अभी घर से खाकर ही आ रहा है। मैं रोटियां बनाकर रख आई थी," अत्यंत संकोच के साथ लछमा ने आपत्ति प्रकट कर दी।

"अं ऽ ऽ, यों ही कहती है। कहां रखी थीं रोटियां घर में?" बच्चे ने रुआंसी आवाज़ में वास्तविक स्थिति स्पष्ट कर दी। वह ध्यानपूर्वक अपनी माँ और इस अपरिचित व्यक्ति की बातें सुन रहा था और रोटियों को देखकर उसका संयम ढीला पड़ गया था।

"चुप!" आंखें तरेरकर लछमा ने उसे डांट दिया। बच्चे के इस कथन से उसकी स्थिति हास्यास्पद हो गई थी, इस कारण लज्जा से उसका मुँह आरक्त हो उठा।

"बच्चा है, भूख लग आई होगी, डांटने से क्या फायदा?" गुसांई ने बच्चे का पक्ष लेकर दो रोटियां उसकी ओर बढा दीं। परंतु मां की अनुमति के बिना उन्हें स्वीकारने का साहस बच्चे को नहीं हो रहा था। वह ललचाई दृष्टि से कभी रोटियों की ओर, कभी मां की ओर देख लेता था।

गुसांई के बार–बार आग्रह करने पर भी बच्चा रोटियां लेने में संकोच करता रहा, तो लछमा ने उसे झिड़क दिया, "मर! अब ले क्यों नहीं लेता? जहां जाएगा, वहीं अपने लच्छन दिखाएगा!"

इससे पहले कि बच्चा रोना शुरू कर दें, गुसांई ने रोटियों के ऊपर एक टुकड़ा गुड का रखकर बच्चे के हाथों में दिया। भरी–भरी आंखों से इस अनोखे मित्र को देखकर बच्चा चुपचाप रोटी खाने लगा, और गुसांई कौतुकपूर्ण दृष्टि से उसके हिलते हुए होठों को देखता रहा।

इस छोटे–से प्रसंग के कारण वातावरण में एक तनाव–सा आ गया था, जिसे गुसांई और लछमा दोनों ही अनुभव कर रहे थे।

स्वयं भी एक रोटी को चाय में डुबाकर खाते–खाते गुसांई ने जैसे इस तनाव को कम करने की कोशिश में ही मुस्कराकर कहा, "लोग ठीक ही कहते हैं, औरत के हाथ की बनी रोटियों में स्वाद ही दूसरा होता है।"

लछमा ने करूण दृष्टि से उसकी ओर देखा। गुसांई हो–होकर खोखली हँसी हँस रहा था।

"कुछ साग–सब्जी होती, तो बेचारा एक–आधी रोटी और खा लेता।" गुसांई ने बच्चे की ओर देखकर अपनी विवशता प्रकट की।

"ऐसी ही खाने–पीनेवाले की तकदीर लेकर पैदा हुआ होता तो मेरे भाग क्यों पडता? दो दिन से घर में तेल–नमक नहीं है। आज थोडे पैसे मिले हैं,आज ले जाऊंगी कुछ सौदा।"

Scanned by CamScanner

हाथ से अपनी जेब टटोलते हुए गुसांई ने संकोचपूर्ण स्वर में कहा, "लछमा!"

लछमा ने जिज्ञासा से उसकी ओर देखा। गुसांई ने जेब से एक नोट निकालकर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, "ले, काम चलाने के लिए यह रख ले,मेरे पास अभी और है। परसों दफ्तर से मनीआर्डर आया था।"

"नहीं–नहीं, जी! काम तो चल ही रहा है। मैं इस मतलब से थोडे कह रही थी। यह तो बात चली थी, तो मैंने कहा," कहकर लछमा ने सहायता लेने से इन्कार कर दिया।

गुसांई को लछमा का यह व्यवहाँर अच्छा नहीं लगा। रूखी आवाज में वह बोला, "दुःख–तकलीफ के वक्त ही आदमी आदमी के काम नहीं आया, तो बेकार है! स्साला! कितना कमाया, कितना फूंका हमने इस जिंदगी में। है कोई हिसाब! पर क्या फायदा! किसी के काम नहीं आया। इसमें अहसान की क्या बात है? पैसा तो मिट्टी है स्साला! किसी के काम नहीं आया तो मिट्टी, एकदम मिट्टी!"

परन्तु गुसांई के इस तर्क के बावजूद भी लछमा अडी रही, बच्चे के सर पर हाथ फेरते हुए उसने दार्शनिक गंभीरता से कहा, "गंगनाथ दाहिने रहें, तो भले–बुरे दिन निभ ही जाते हैं, जी! पेट का क्या है, घट के खप्पर की तरह जितना डालो, कम हो जाय। अपने–पराये प्रेम से हंस–बोल दें, तो वह बहुत है दिन काटने के लिए।"

गुसांई ने गौर से लछमा के मुख की ओर देखा। वर्षों पहले उठे हुए ज्वार और तूफान का वहाँ कोई चिह्न शेष नहीं था। अब वह सागर जैसे सीमाओं में बंधकर शांत हो चुका था।

रुपया लेने के लिए लछमा से अधिक आग्रह करने का उसका साहस नहीं हुआ। पर गहरे असंतोष के कारण बुझा–बुझा–सा वह धीमी चाल से चलकर वहाँ से हट गया। सहसा उसकी चाल तेज हो गई और घट के अंदर जाकर उसने एक बार शंकित दृष्टि से बाहर की ओर देखा। लछमा उस ओर पीठ किए बैठी थी। उसने जल्दी–जल्दी अपने नीजी आटे के टीन से दो–ढाई सेर के करीब आटा निकालकर लछमा के आटे में मिला दिया और संतोष की एक सांस लेकर वह हाथ झाडता हुआ बाहर आकर बांध की ओर देखने लगा। ऊपर बांध पर किसी को घूमते हुए देखकर उसने हांक दी। शायद खेत की सिंचाई के लिए कोई पानी तोड़ना चाहता था।

बांध की ओर जाने से पहले वह एक बार लछमा के निकट गया। पिसान पिस जाने की सूचना उसे देकर वापस लौटते हुए फिर ठिठककर खडा हो गया, मन की बात कहने में जैसे उसे झिझक हो रही हो। अटक–अटककर वह बोला, "लछमा .. ।"



लछमा ने सिर उठाकर उसकी ओर देखा। गुसांई को चुपचाप अपनी ओर देखते हुए पाकर उसे संकोच होने लगा। वह न जाने क्या कहना चाहता है, इस बात की आशंका से उसके मुँह का रंग अचानक फीका होने लगा। पर गुसांई ने झिझकते हुए केवल इतना ही कहा, "कभी चार पैसे जुड जाएं, तो गंगनाथ का जागर लगाकर भूल–चूक की माफी मांग लेना। पूत–परिवारवालों को देवी–देवता के कोप से बचा रहना चाहिए।" लछमा की बात सुनने के लिए वह नहीं रुका।

पानी तोड़नेवाले खेतिहार से झगडा निपटाकर कुछ देर बाद लौटते हुए उसने देखा, सामनेवाले पहाड़ की पगडंडी पर सर पर आटा लिए लछमा अपने बच्चे के साथ धीरे–धीरे चली जा रही थी। वह उन्हें पहाड़ी के मोड़ तक पहुंचने तक टकटकी बांधे देखता रहा।

घट के अंदर काठ की चिडियां अब भी किट–किट आवाज़ कर रही थीं, चक्की का पाट खिस्सर–खिस्सर चल रहा था और मथानी की पानी काटने की आवाज़ आ रही थी, और कहीं कोई स्वर नहीं, सब सुनसान, निस्तब्ध!

Scanned by CamScanner

# शालिनी सिंह

शालिनी सिंह का जन्म 7 फरवरी 1972 को दिल्ली के एक संयुक्त परिवार में हुआ। आपने दिल्ली विश्वविद्यालय में एम. ए. (हिंदी) तथा करूक्षेत्र विश्वविद्यालय से बी. एड. किया। पिता सरकारी अधिकारी तथा दादाजी सरकारी शिक्षा संस्थान में प्रिंसिपल के पद पर थे। आपने दादाजी की मृत्यु के पश्चात पिता को घर की जिम्मेदारी का खुशी–खुशी से वहन करते देखा है। आपका विवाह लखनऊ के एक संयुक्त परिवार में हुआ। अतः संयुक्त परिवार के संस्कार आप पर हुए हैं। इन्हीं संस्कारों के साथ आपने परिवारों को समय के साथ विघटित होते देखा है। इन्हीं परिवर्तन को तथा अपने आसपास के परिवेश में आ रहे बदलाव को आपने अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। आपका 'बदलते मौसम' नामक कंहानी संग्रह प्रकाशित हो चुका है और दर्जन भर कहानियाँ साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं।

'गृह प्रवेश' कहानी उस पिता के अकेलेपन की वेदना को बयान करती है, जिनके बच्चों ने अपने यूरोप दौरे पर उन्हें वृद्धाश्रम में रखा था। पिता का अकेलापन तभी टूट जाता है, जब बच्चों के वापस लौट कर पुनः ग्रह प्रवेश के साथ होली का त्यौहार एक साथ मनाने का निश्चित होता है।

कहानी में वृद्ध पिता रिटायर्ड इंजीनियर है, तो उनकी पत्नी लक्ष्मी एक आदर्श पत्नी तथा कर्मनिष्ठ गृहिणी है। माता–पिता ने अपने बच्चों को पढ़ाया, बड़ा किया, उनके लिए बड़ा आशियाना भी बनवाया लेकिन उनके ही बच्चों द्वारा अपनी यूरोप यात्रा के दौरान माता–पिता की सुरक्षा हेतु उन्हें वृद्धाश्रम में रखने का लिया गया फैसला पिता को दुख पहुँचाता है। पिता को ऐसा लगता है कि जिसने अपने बेहतरीन साल इस घर और बच्चों को दिए और जब उन्हें सबके साथ और प्यार की जरूरत है तभी वे दूर हो गये। पिता को अपने पुराने दिन याद आ जाते हैं जब उन्होंने घर में अपना हुक्म मात्र चलाया था, अपनी पत्नी को भी ठीक से समझने की कोशिश नहीं की थी, लेकिन पत्नी तो पहले की तरह आज भी पति के अकेलेपन में भी उनका साथ दे रही है। पत्नी लक्ष्मी का एक कर्मनिष्ठ स्त्री और आदर्श पत्नी का रूप यहाँ सामने आता है।

कहानी में पति का पत्नी को लेकर किये गये अपने व्यवहाँर के प्रति पश्चाताप भी है और बच्चों, पोतों से दूर अकेलेपन की पीड़ा भी है। घर में सबका खुशियों के साथ मिल–जुलकर रहना ही माता–पिता तथा बच्चों के जीवन को सार्थक बना देता है, यही इस कहानी की मूल संवेदना है।

राधेलाल-लक्ष्मी

9

# गृहप्रवेश

– शालिनी सिंह

आई झूम के वसन्त, झूमो संग संग में
आई झूम .....

गाना रेडियों में चल रहा था, राधेलाल जी गाना सुनते–सुनते गुम हो गए, हफ्ते भर पहले से घर में होली का रंग चढ़ जाता। उनके घर सब बहिन भाई इकठ्ठा होते दिन भर घर में बच्चों धमाचौकड़ी लगती। लक्ष्मी और अम्मा के सौजन्य से होली पर बगीची में बढ़िया मजबूत झूला डाला जाता। चारों तरफ गुझिया की महक दही बड़ो की सुगबुगाहट, दबे पावों गुपचुप ठंडाई, नमकीन मीठे सेव, चटपटी पापड़, बड़िया और उस पर पुरे कॉलोनी की औरतों क़ा जमावाड़ा। दहन वाले दिन घर के सामने ही लकडियाँ लगायी जाती, पंडित जी के महूर्त के हिसाब से होलिका दहन का शुभ कार्य होता लोग गेहूँ की बालियाँ, गोबर के कंडे की माला पोह कर होलिका में चढ़ाते। उसके बाद कार्यक्रम चलता गरमा गरम जलेबी, दाल की कचौड़ी, दही बड़े और भी जाने क्या–क्या फिर शुरु होता अबीर बच्चों द्वारा पोर्च में बड़ा सा टब रखा जाता जिस में रंग घोल जाता। सुबह से ही रिश्तेदारों का जमावड़ा शुरू हो जाता जो भी आता उस रंग भरे टब की शोभा जरूर बढ़ाता।

बच्चे तो बच्चे बड़े भी जम कर होली खेलते, एक दिन के लिए ही सही बचपन लौट आता। तभी तन्द्रा भंग हुई "आपने दवाई नहीं खाई अभी, खा लीजिए वरना फिर तबियत गड़बड़ा जायेगी।" उसकी आवाज सुनकर मैं जैसे बोखला बोखला सा गया कहाँ से कहाँ जा पहुँचा। परिस्थिति का एहसास होते ही आँखें नम हो आयी। अभी कुछ समय हुआ मुझे और लक्ष्मी को यहाँ आए। यहाँ मतलब वृद्धा आश्रम। हमारे बच्चे हमें यहाँ, वर्द्धाआश्रम में छोड़ गए हैं। वो लोग योरप ट्रिप पर जा रहे थे और उनका कहना था कि इतने बड़े घर में अकेला रहना अक्लमंदी नहीं है। जिस तरह के हालात शहर के बन गए हैं। जैसे ही पता चलता है कि बुजुर्ग अकेले हैं, वारदात को अंजाम दे दिया जाता है। इसीलिए सबके लिए यही बेहतर होगा कि आप कुछ समय के लिए आश्रम चले आइए, सुन कर ही

Scanned by CamScanner

कलेजा मुँह तक आ रहा था।" शहर का सबसे बढ़िया ओल्ड एज होम है" ये छोटा बेटा था।"आप के जैसे बहुत लोग वहाँ हैं आपको अकेला भी नहीं लगेगा" लगा मुझे फुसला रहा है, ठीक वैसे ही जैसे बच्चों से अपनी बात बनवाते हैं टॉफी चॉकलेट का लालच दिखा कर। मेरी आवाज़ नहीं निकली लगा गले में कोई गोला फंस गया है। दो बूंद आंसू जैसे मेरे दिल पे जा गिरे। लगा ये लोग मुझे नोच कर अपने से दूर फेंकना चाहते हैं मेरा दिल पूरे जोर से धड़क रहा था इतना तेज कि मैं उसकी आवाज़ जैसे बाहर तक सुन पा रहा था। ना कुछ कह पा रहा था ना ही चुप रह पा रहा था। मैं चीफ इंजीनियर के पद से रिटायर हुआ था। इतना बड़ा बँगला मैंने हम सबके लिए बनवाया था। पर आज जैसे सब कुछ उलट पुलट हो गया था, मुझे मेरे ही आशियाने से हटाया जा रहा था। बच्चे शायद पहले से ही सब सोच कर बैठे थे तभी तो मेरे सारे वार वो कुशल सैनिक की तरह हवा में ही काट दे रहे थे। मुझे अपने आप एक ऐसे पशु जैसे जान पड़ता था जिसने अपने बेहतरीन साल इस घर और बच्चों को दिए और आज जब मुझे इनके प्यार, साथ की जरूरत है तब ये मुझे जिबह करने की तैयारी में हैं। लक्ष्मी को तो सदा ही चुप रहते हर हाल में खुश रहते देखा है। वो सदा ही सबके साथ कंधे से कंधा मिलाकर खड़ी रहती न कोई मांग ना शिकायत, हुंह, उसको इन सब बातों की अक्ल ही कहाँ है जाहिल औरत, इतना सब आराम मेरे दम पर किया वरना वो है क्या। अगर घर भी नहीं देखेंगी तो करेगी क्या। आज भी वो मेरे लिए एक तुच्छ प्राणी ही साबित हो रही थी। मैं हैरान था, वो आज भी चुप थी। मैंने उसे घूर कर देखा बच्चे तब तक अपना तुगलकी फरमान सुना कर जा चुके थे। और वो मेरा और अपना जरूरी सामान पैक करने मैं जुटी थी। आज भी मांग में खूब भर–भर सिंदूर लगाये थी, " गवार" मैं मन ही मन बुदबुदाया मैंने सदा ही उसे अपने कामों में मगन ही देखा था मानो घर में नौकरों की फौज की मुखिया हो। क्या बनाना है, किसे क्या पसंद है क्या नहीं, किसे क्या नुकसान करता है, क्या फायदा, इन सब बातों का ध्यान वो बखूबी रखती। कोशिश करती कि मेरे माँ बाबा का पूरा ध्यान रखे वो लोग भी लक्ष्मी को आशीर्वाद देते ना अघाते। मैंने उन्हें कभी लक्ष्मी की शिकायत करते नहीं देखा। शिकायत, शिकायत तो मुझे भी नहीं थी उससे, पर उसे तो शायद उम्मीद भी नहीं थी मुझसे कुछ कभी तभी तो वो सदैव अपने में मगन मुख पर मुस्कुराहट सजाये आने जाने वालों रिश्तेदारों, यहाँ तक की नौकरों की भी चाहती थी। पर मैं कभी उसे उस नजर से देख ही नहीं पाया। मैं तो सदा ही उसका सारा समर्पण, प्रेम कर्मनिष्ठा सभी कुछ मात्र अपना हक समझ कर वसूलता रहा। उसका मेरी जिंदगी में कभी कोई खास अस्तित्व नहीं रहा मेरी भूमिका सदैव एक मालिक की थी और उसकी समयानुसार, अवश्यकतानुसार बदलती रहती, बिना शिकायत बिना शिकवा।

इंसान कितना चालक होता है आज जब दिक्कते मुझ पर आयी तो



अचानक ही लक्ष्मी की दुःख जरूरतों का ही ख्याल आया। खुद पर कुछ शरम सी भी आ रही थी। उसके पिछली 35 साल की सेवा का ख्याल तब आ रहा था जब पानी मेरे सर से ऊपर गुजर गया। तभी लगा कोई मुझे हिला रहा है, चौक कर देखा 'ओह लक्ष्मी, मैं भी सोचते–सोचते कहाँ का कहाँ पहुँचता हूँ। लक्ष्मी, हाथ में दवाई पकड़े शांति से खड़ी थी। ना जाने क्यों उसे देख कर मुझे बड़ी ग्लानि महसूस हो रही थी। दवाई खाकर उसका हाथ पकड़ कर वही बिस्तर पे बैठा लिया। वो चौक गयी क्योंकि मैंने ऐसा व्यवहार उससे कभी नहीं किया। वो हतप्रभ, विस्मित फैली आँखों से मुझे निहार रही थी, मैं कुछ बोलना चाहता था पर आवाज़ साथ नहीं दे रही थी। उसने मेरा हाथ अपने हाथों में लेकर धीरे से दबाया जाने क्या था कि अंदर तक सकूँ की लहर उतर गयी। उसने सहारा दे कर मुझे धीरे से लिटा दिया और चादर उड़ा दी। मैं किसी आज्ञाकारी बच्चे सा लेट गया और वो दया की प्रतिमूर्ति धीरे–धीरे मेरा सिर थपक रही थी। उसकी पतली लम्बी उँगलियाँ मेरे बालों में चलायमान थी सिर के पौरो से नींद नशे सी रगों में उतरी जा रही थी। कब मैं नींद की आगोश में था पता ही नहीं चला। उठा तो सिर भारी था वो फोन पर किसी से बात कर रही थी। मुझे उठा देख मेरे पास आई अंदर जैसे कुछ घुट सा रहा था।

न जाने मन की बात वो कैसे समझ लेती थी हैरानी थी मुझे उसने पीने के लिए पानी दिया और मैं बिना बोले पी गया। पर्दा खसकाया तो बाहर का धुनधल्का बड़ गया था बाहर लॉन में खूबसूरत लाइट लगी थी छोटा सा फवारा भी अपनी छठा बिखेर रहा था। एक समय वो भी था मैं अपने लिए तन्हाई चाहता था। आज उसी तन्हाई से डर–लग रहा था। कुछ लोग चहलकदमी कर रहे थे। नीचे कैफेटेरिया भी था। मैं बीबी का हाथ पकड़े उसी तरफ चल दिया वो अब कुछ उलझी हुई दिख रही थी क्योंकि कभी भी उसे मैं इस तरह कहीं न ले गया था। उसे मेरी दीमागी हालात पर शक हो रहा था। उसकी पसंद की काफी ऑर्डर की। शायद मैं अपने किये का प्रायश्चित कर रहा था। शाम की कॉफी कुछ असर कर गयी मैं उसे पकड़े लॉन में आ गया, वही बेंच पर ही बैठ गया और शादी की शुरू से बातें दिमाग में घूमने लगी। बच्चों की अठखेलियाँ, माँ, बाबूजी, घर, परिवार की चिंतायें। लक्ष्मी की कर्मठता सब बारी–बारी दिमाग में घूम रही थी। जिदंगी दबे पाओं सर–सर कब निकल गयी पता ही ना चला। समझ तो तब आया जब तेज भागती जिंदगी में रिटायरमेंट का ब्रेक लगा, तब समझ आया कि हर कोई अपने काम में व्यस्त है। एक मैं ही हूँ जिसके पास कोई काम नहीं। समय पर नाश्ता, खाना मिल जाता, देखता कि लक्ष्मी आज भी उतनी ही व्यस्त है, उसे आज भी हजारों काम थे सुबह जब आँख खुलती तो सब अखबार मुझे पहले की तरह मेज पर मिलते और वो खुद चाय का कप लिए क्यारियों के बीच बैठी कभी पौधे सींचती, कभी हलकी फुलकी कटिंग करती वह भी बिजी फिर बहुओं के साथ

Scanned by CamScanner

नाश्ता बनाती, सबको पहले की ही तरह प्यार मनुहार से ही नाश्ता कराती। फिर पूजा–पाठ, खुद का नाश्ता उसकी जिंदगी में हर बात भगवन से जुड़ी थी। सुबह शाम को ठाकुर जी की आरती तो अत्यन्त जरूरी थी। जाने महीने में कितने दिन व्रत करती।

सारा दिन काम फिर बच्चों की पढ़ाई में मदद। मैं हैरान होता कि वो शायद सदा से ही इतने काम करती होगी मुझे कभी क्यों दिखाई नहीं पड़ा। मुझे तो लगता रहा कि मेरी बीवी जैसे लोगों के पास काम ही क्या है इतने नौकर हैं, ये क्या करती होगी। बुद्धिजीवी अरे नहीं ऐसे किसी शब्द को उसके लिए मैं सोच भी नहीं सकता था। पर मैं हैरान था कि वो बच्चों की मनोस्थिति बहुत बढ़िया समझती थी परेशानी कैसी भी हो उसका हल लक्ष्मी के पास जरूर होता। मैं अभी भी उस पहेली को सुलझाने की जुगत में था कि वो फिर प्रकट हुई चलिए खाना खा लीजिए। ठंडा खाना आपको पसंद नहीं है। मैं मूक अभी भी हैरान था उसे मेरी चिंता थी। फिर अहम् ने सर उठाया उसके पास मेरे सिवा है ही क्या मेरी पेंशन न हो तो इसका क्या हो, यहाँ भी अपने अहम् की ही तुष्टि कर रहा था। सच ये था कि उसे अपने से ऊपर सोचने मात्र से मैं घबराता था। क्या मैं बीमार हूँ एहसासे कमतरी का। घर हो या यहाँ हर जगह वो मानसिक सुदृढ़ और शांत थी। इसका क्या था उसमें जो मैं ना चाहते हुए भी उससे हार रहा था। खुद को कमजोर पा रहा था तभी उसने हलके से सर हिला कर मुझे अंदर आने का निमंत्रण दिया। यहाँ भी कई बुजुर्ग उसे दुआ सलाम कर रहे थे और वो भी उतने ही प्यार से सबका जवाब दे रही थी।

उसका आकर्षण किसी चुम्बक की तरह, सबको अपनी तरफ खींचने में सक्षम था। मनभावन सी सूरत जिसे देख कर हर छोटा बड़ा कुछ देर के लिए अपना दुःख भूल जाता। तब तक उसने खाना परस कर मुझे दे दिया और मैं फिर हैरान सब कुछ मेरी पसन्द का ही था प्लेट में। औरत है या जादूगरनी। सदा की तरह सर झटका खाना खाया और कमरे में आ गया। फिज़ा मैं अभी भी हलकी खुनकी लिए ठंडक थी। हलका कंबल डाल कर लेट गया। दिमाग का दानव फिर से बाहर आया। इन बच्चों को शहर के सबसे महंगे स्कूल में भेजा। बढ़िया महंगी–महंगी कोचिंग, बढ़िया कॉलेज, क्या ये सब मेरे पैसे बिना हो पाता, शाही खर्चे, ये सब क्या हो पाता दिमाग फिर घुर्राया आज मुझे मेरे ही घर से निकालकर यहाँ पटक दिया। दिमागी घोड़े दौड़ रहे थे, सर भारी हो गया था। सो गया जब आँख खुली थी तब उलझन सी रही थी आँखें लाल थी, उसने झट से रिसेप्शन पर फोन किया। कुछ ही देर में डॉ. भी आ गया कुछ जरूरी टेस्ट बताया और कुछ दवाई देकर चला गया इससे पहले मैं कुछ कहता लक्ष्मी ने इशारे से मुझे चुप कराया। मैं शायद दवाई के नशे में था आँखें बोझिल थी जबान भारी हो रही थी कुछ ही देर में अपने आप से जद्दों जहद करते हुए सोने की कगार पर था, उसने



समय रहते सब संभाल लिया। मैं उस पर हैरान जरूर था पर इसे पूरी तरह मान पाना मेरे बस के बाहर ही था। कभी–कभी वो मुझे चंद्रकांता की रहस्य भरी दुनिया की याद दिलाती। दिखती, तो आज भी नाजुक सी थी पर जरूरत पड़ने पर क्या रूप बदल ले कहना थोड़ा मुश्किल था। क्या वो कभी परेशान नहीं होती थी। उसने तो सम्पूर्ण जीवन सिर्फ और सिर्फ बच्चों के नाम कर दिया था। मैं तो खुद को सदा ही इस परिवार का सर्वेसर्वा समझता रहा। सदा ही इस मुगालते में जीत रहा कि मेरे बिना इस परिवार का कुछ नहीं हो सकता। अपने साम्राज्य का वेतिलक राजा जिसे किसी के सुख दुख से कोई फर्क ही नहीं पड़ता था। वो तो अपने दिल दिमाग की सुनता और मानता था उसका काम सिर्फ घर के काम के लिए पैसे कमाना था और घर में हुकूमत चलाना जिसे लक्ष्मी पूरी निष्ठा से मानती भी थी। लेकिन यहाँ तो बच्चों ने दूध में पड़ी मक्खी की तरह आराम से बहार कर दिया यही सोचते–सोचते गहरी नींद की आगोश में कब पहुँच गया पता नहीं।

साला नींद में भी चैन नहीं, दिमागी घोड़े लगातार भाग रहे थे। सरपट बिना रूके जाने कहाँ–कहाँ, क्या उसे बुरा नहीं लगता होगा। जब से बच्चे हुए तभी से उनकी जिम्मेदारी खुद बखुद लक्ष्मी की हो गयी थी, आये भई तो इसमें नया क्या आखिर से वो बच्चों की माँ है, जिम्मेदारी वो नहीं तो कौन उठाएगा। वो अल्लादीन के जिन से कम ना थी, जाने सब काम कैसे कर लेती थी। रात भर बच्चों के साथ जगना, दिर भर घर का काम किसके लिए क्या बनना है। पसंद नापसन्द उसे कभी ना भूलती सदा ही प्यार मनुहार से खिलाती नज़र आती" हे भगवान मेरा सर जैसे सोते मैं भी भारी हो रहा था। माथे पर पसीने की बूंदे आ गयी थी मौसम में अभी खुनकी भरी ठण्ड थी। मैं घबरा रहा था क्या मेरे जाने का समय आ गया, अरे नहीं, ये क्या सोच रहा हूँ। सपने में भी मौत का सोच कर डर रहा था। क्या अपने बच्चों से बिना मिले ही चला जाऊँगा। परसों ही तो होली है, अगर मुझे कुछ हो गया तो बच्चों की होली खराब हो जायेगी। जिन बच्चों को स्टेटस सिंबल से ज्यादा कभी कुछ ना माना। आज वो इतने याद आ रहे हैं। आखिर से मैं हूँ, तो बहुत मोकापरस्त इंसान। दिल एकदम से बोला मैंने उसे भी घुड़की दी आखिर से मेरी ही वजह से ही तो इतना पढ़ पाये हैं। मेरे अहम ने सांप की तरह फिर फंकारा। सपनों की इसी जद्दो जहद में था कि ट्रिन–ट्रिन की आवाज़ से अचकचा कर उठ बैठा। बगल में पड़ा मोबाइल बड़े बेटे का नम्बर स्क्रीन पर चमक उठा। बिजली की गति से फोन उठाया तुरंत कान से लगाया।

मेरी हुँकार सुन बड़े बेटे ने बड़े ही अदब से मध्यम स्वर में प्रणाम किया कुछ पल के लिए लगा किसी ने कानो में मिश्री घोल दी। आँखे ना जाने क्यों नम हो आयी। आवाज़ गले में फँस कर रह गयी। जाने कैसे मुँह से निकला खुश रहिये" मैं हैरान था, क्या मैं इन सबका आदि हो चुका हूँ, उसने मेरा हाल चाल

Scanned by CamScanner

लिया जैसे मैंने औपचारिकता पूरी की, बोला मम्मी से बात करा दीजिए, लक्ष्मी ने बड़े ही आराम से फोन लिया न कोई हड़बड़ी न जल्दबाजी कमरे से दूसरे कोने में जा कर टहल–टहल कर आराम से बात करती रही। मंद–मंद मुस्काती वो आज भी उस उम्र में भी खूबसूरत दिखती है, ना चाहते हुए भी महसूस किया उसने लगभग 20 मिनट तक बात की अब मुझे जलन हो रही थी अरे भई ऐसी भी क्या बात है जो खत्म होने में ही नहीं आ रही थी मुझसे बात करने के लिए 2 मिनट भी नहीं और अब..... मुझे अच्छा नहीं लग रहा था। आखिर को अपना आपा खो बैठा। "कितनी बात करोगी आखिर से बिल भी आता है फोन का।" उसने अपनी घनेरी पलके उठा कर मुझे देखा और चन्द सेकेंड में वेटे को समझाया", बाद में बात करती हूँ आप को अभी कुछ चाहिए और फोन रख दिया। उसने बड़े ही कायदे से बात को समेट दिया था। मुझे अब कुछ ग्लानि हो आयी थी। वो मुझसे कुछ नहीं बोली और जाकर सूखे कपड़े समेटने लगी। मैं जैसे उसकी हिम्मत का कायल हो रहा था इसी उधेड़ बुन में कब शाम का धुंधलका फैला पता ही नहीं चला। जल्दी ही खाना खा कर लेट गया। दिमागी घड़ी फिर टिक–टिक भागी। आज बॉस से झकझक हो गयी थी। मूड बहुत खराब था, घर पर माँ ने शायद कोई अनुष्ठान रखा था, लिविंग रूम में ही बड़ी मनमोहक झांकी सजी थी, पूरा घर धूप अगरबत्ती की खुशबू से सुवासित था, माहौल बड़ा ही सकूँ देने वाला था पर मैं ना जाने क्यों झल्ला रहा था। पैर पटकता सीधे अपने कमरे में गया। पलक झपकते ही लक्ष्मी हाजिर थी। हाथ में झक सफेद कुरता पाजामा लिए मैं कपड़े लेकर बाथरूम में घुसा, तो देखा मेरी पसंद का साबुन जगह से गायब है। जैसे ही बाहर निकला वो सामने ही खड़ी थी, कुछ कहना था, शायद उसे पर मैं आपे से बाहर था उसकी बाँहों को इतना जोर से पकड़ा की मेरी उंगलियाँ उसके, सुडोल नाजुक हाथों में घुस गयी, वो एकदम तिल मिला गयी आँखों में पानी का सैलाब भर गया। वो शायद मुझे बुलाने आयी थी। पूजा में बैठने के लिए माँ ने ही भेजा होगा। गुस्से में मैंने उसे झटक दिया, वो पलंग पर जा गिरी। "जाओं यहाँ से" मैं चिल्लाया और वो धीमे से बिना आवाज़ किये आँखे पोंछकर बाहर निकल गयी। और में मुँह ढांककर सो गया।

आज अभी तक वह नहीं आयी थी। मैं बहुत देर से इंतजार कर रहा था। जाने इस औरत के पास कितना काम है, जो साला रात में भी खत्म नहीं होता। सब नाटकी है जब सारा काम ये करती है, तो ये सारी नौकरों की फौज क्या करती है। तभी धीरे से उसने अंदर कदम रखा कपड़ों से मसालों की गंध आ रही थी। वो बाथ रूम में घुस गयी मुझे लगा जैसे शावर के सहारे पानी से अपनी थकान वहा रही है। कुछ ही देर में वो बाहर आयी, तो ताजा चेहरा चमक रहा था। बालों की लटों से पानी की बूंदे उसके कान के पास से होती हुई गले पर मोती की तरह गिर रही थी। खूबसूरत सा गाउन कंधे और पीठ पर गीले बालों



से भीग कर चिपक गया था वो कुछ अचकचा रही थी और मैं लगातार उसे घूर रहा था "यहाँ आओ" वो तो जैसे हुकुम की गुलाम धीरे से आ कर बैठ गयी और फिर मैं था और मेरी भूख। एक बार चेहरे पर नज़र गयी, तो लगा आँखों से आँसू वह रहे हैं। अन्दर का एहम फिर जागा साला सब तिरिया चरितर है, जब देखो मूड खराब कर देती है। कोई मुझसे पूछने वाला ना था, कि आखिर से मेरा मूड, ठीक ही कब रहता है। तृप्त हो मैं सो गया सुबह आँख खुली तो उसे वापस से दैनिक कार्यों में जूझते देखा। मैं भी तैयार हो ऑफिस निकल गया शाम को चाय अपने कमरे में ही मंगवा लिया, वो चाय रखने झुकी तो साड़ी का पल्ला कुछ सरक सा गया और मेरे रात के कारनामों की चुगली कर गया पर वो मैंने ही कहा, जो अपनी गलती का एहसास कर पाए। झट टीवी का रिमोट लिया और सब फालतू बातें दिमाग से बाहर। मानो से सारे न्यूज चैनल वाले सिर्फ मेरे लिए ही प्रोग्राम बनाते हैं। तभी उसने मुझे धीरे से हिलाया और मैं पास्ट से प्रजेन्ट में आ गया वो दवाई लिए खड़ी थी उसने धीरे से मेरा मुँह पकड़ कर ठीक किसी बच्चे की तरह खोला गोली जबान पर रखी और झट पानी का गिलास मेरे मुँह से लगा दिया। मेरे दिमाग एकदम भक से उड़ा। याद आया जब उलटे हाथ का भरपूर तमाचा लक्ष्मी को पूरी तरह हिला गया था। हमला इतना अचानक था कि उसकी आँखों में आँसू भी ना आ पाए थे, वो अविश्वास से खड़ी एकटक मुझे देख रही थी। जरा सी सिसकारी उसके मुँह से निकली, तो तैंने इतनी तेज़ उसका मुँह अपने हाथ से दबाया कि उसका मुँह अन्दर से कट गया और होंठो के कोने से पतली सी खून की धार बह आयी और उसे चुप रहने का इशारा किया और आज ....?

मुझे ये कैसे ख्याल आ रहा है ? मैं कही पागल तो नहीं हो रहा। अब मुझे अपनी हालात पर शक होने लगा था। लक्ष्मी के संग किया अपना व्यवहार मुझे शर्म महसूस करा रहा था जब तक अंदर से आत्मा कचोटती। मैं खुद में ही उलझ रहा था। लक्ष्मी हर जगह मुझसे 20 ही साबित हो रही थी। याद आया वो अक्सर दुपहर को सारे नोकरों के बच्चों सी घिरी पायी जाती कभी साफ सफाई कभी पढ़ाई पर उन्हें ना जाने क्या समझाती मजेदार बात ये कि वो सब उसे बड़े ही ध्यान से सुन रहे होते थे। तब मैं लक्ष्मी की इन सारी बातों को अक्सर ही ढकोसले का नाम देता पर आज वो हर जगह मुझसे मजबूत साबित हो रही थी और मैं अपने घर का बेताज बादशाह केवल मुगालतों में ही जीता रहा। मैं तो सबको कठपुतली की तरह अपने उंगलियों पर नचाना चाहता था, पर डोर तो कबकी मेरे हाथों से निकल चुकी थी क्या वाकई में एक कमजोर शख्स हूँ, मैं खुद को संभल नहीं पा रहा था। सुबह काफी थकन सी महसूस हो रही थी। बाहर काफी शोर सा लग रहा था शायद लोग बाग होली की मस्ती में मग्न थे। आँख की कोरे भीग रही थी। लगा मैं कितना अकेला हूँ तभी लगा पैरों पर किसी ने हाथ लगाया अनमने से मैंने आँखें खोली तो मुह से "अरे" के सिवा कुछ न

Scanned by CamScanner

निकला'' तुम सब कब आये'' हंसी मेरे पूरे चेहरे पर पसर गयी यही लक्ष्मी मन्द – मन्द मुस्करा रही थी। छोटा पोता बिस्तर पर चढ़ आया ''बाबा जानते हैं पेरिस में जो एफिल टावर है, वो बहुत ऊँचा है। मैंने सर पीछे करके देखा तो मेरी टोपी ही गिर गई'' उसकी बात सुन सब ठहाका मार हंस पड़े वो थोड़ा झेंप गया मगर मैं तो जैसे निहाल था शब्द साथ नहीं दे रहे थे। तभी मेरा छोटा बेटा कमरे में तेजी से दाखिल हुआ बोला ''दादा सब क्लियर कर दिया है। जल्दी अब यहाँ से निकलिये, होली की तैयारी भी करनी है। घर पहुँचने तक तो मैंने जैसे तैसे खुद को संभाले रखा पर देहलीज पर कदम रखते ही आंसू बांध तोड़ बह निकलें, पोता तुरंत बोला'' अरे बाबा रो रहे हैं'' सबको लगा मेरी तबियत खराब हो रही है, तो सब एकदम ही लपके परन्तु महामाया जगतजननी लक्ष्मी की आँखों में सकूँन साफ दिख रहा था।'' बोली शायद आँखों में ड्राई नेस हो रही है। मैं अभी आँखों की दवा दाल दूंगी'' कह उसने आँखों ही आँखों में कुछ इशारा किया। जिंदगी में पहली बार मैं उसकी बात से सहमत हो पाया था। ''चलिये अपने कमरे में चलते हैं।'' और मैं उसके आदेश अनुसार पीछे–पीछे चल दिया।

●

Scanned by CamScanner

# स्वयं प्रकाश

मध्यवर्गीय जीवन के कुशल चितेरे स्वयं प्रकाश का जन्म 20 जनवरी 1947 में मध्य प्रदेश के इंदौर में हुआ। मैकेनिकल इंजीनियरिंग की पढ़ाई पूर्ण कर एक औद्योगिक प्रतिष्ठान में नौकरी करने वाले स्वयं प्रकाश जी का बचपन और नौकरी का अधिकांश हिस्सा राजस्थान में बीता।

आठवें दशक में उभरे स्वयं प्रकाश हिंदी साहित्य के चर्चित रचनाकार रहे हैं। उनकी कहानियों में एक ओर वर्ग शोषण के विरुद्ध चेतना है, तो दूसरी ओर सामाजिक जीवन में व्याप्त जाति, संप्रदाय और लिंग के आधार पर हो रहे भेदभाव के विरुद्ध आक्रोश है। उनकी अधिकतर कहानियाँ किस्सा गोई शैली में लिखी हुई हैं। सरलता, सादगी, एकता और पारदर्शिता, रोचकता, जीवन संघर्ष, मनुष्य में आस्था आदि आपके द्वारा लिखी गई कहानियों की विशेषताएँ हैं।

**कहानी संग्रह** – 'मात्रा और भार' (1975), 'सूरज कब निकलेगा' (1981), 'आसमां कैसे–कैसे' (1982), 'अगली किताब' (1988), 'आएंगे अच्छे दिन भी' (1991), 'आदमी जात का आदमी' (1994), 'आधार चयन' (1994), 'चर्चित कहानियाँ' (1995)। **उपन्यास** – 'जलते जहाज पर' (1982), 'ज्योतिरथ के सारथी' (1987), 'उत्तर जीवन कथा' (1993), 'बीच में विनय' (1994) आदि।

**नाटक** – 'फीनिक्स' (1980), **निबंध** – 'दूसरा पहलू' (1990)

**व्यंग्य** – 'स्वांतः सुखाय' (1986)

स्वयं प्रकाश के साहित्यिक योगदान को ध्यान में रखते हुए उन्हें 'राजस्थान साहित्य अकादमी' पुरस्कार, 'सुभद्रा कुमारी चौहान' पुरस्कार, 'बनमाली' पुरस्कार, 'साहित्य मनीषी सम्मान', पहल सम्मान, आनंद सागर कथाक्रम सम्मान आदि पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

'अकाल मृत्यु' कहानी उस बच्चे की मानसिक पीड़ा को व्यक्त करती है, जिसे पिता की अकाल मृत्यु के कारण अपनी शिक्षा अधूरी छोड़नी पड़ती है। कहानी में नौवी कक्षा में पढ़ रहे अमृतलाल नामक लड़के की मानसिकता का चित्रण है। उसके दोस्त उसे प्यार से 'इम्मी' कहते थे। इम्मी फुटबॉल का अच्छा खिलाड़ी था। वह पढ़ाई करना चाहता था, लेकिन उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। उसमें भी उसके पिता की अकाल मृत्यु ने उसे अपनी पढ़ाई छोड़ने के लिए विवश किया। इस परिस्थिति ने उसकी कोमल इच्छाओं को तहस–नहस कर उसमें अकाली प्रौढत्व भर दिया। इसी विवंचना को यह कहानी व्यक्त करती है।

Scanned by CamScanner

# 10

# अकाल मृत्यु

– स्वयं प्रकाश

बात तब की है जब मैं नवीं कक्षा में पढ़ता था। हमारी कक्षा में अमृतलाल नाम का एक लड़का था। प्यार से सब उसे 'इम्मी' कहते थे। इम्मी फुटबॉल का बहुत अच्छा खिलाड़ी था। वह न सिर्फ स्कूल की फुटबॉल टीम में था बल्कि संभाग की टीम में भी खेल चुका था। उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। कई बार वह समय पर फीस जमा नहीं करवा पाता था और उसे अक्सर अपनी फीस माफ करवाने के लिए इस–उस के पीछे घूमते देखा जा सकता था। उससे कहा गया था कि जिस दिन उसका चयन राज्यस्तरीय टीम में हो जाएगा, उसकी फीस माफ कर दी जाएगी। नतीजा यह कि स्कूल के बाद अँधेरा होने तक वह स्कूल के मैदान पर फुटबॉल खेलता रहता – चाहे अकेला ही, या दौड़ते हुए मैदान के चक्कर लगाता रहता।

एक दिन सुबह–सुबह पता चला कि इम्मी के पिताजी की मृत्यु हो गई है। हमें बड़ा दुख हुआ। पूरी कक्षा पर जैसे पाला पड़ गया। आधी छुट्टी में जब बाहर निकले तो सड़क से इम्मी के पिताजी की शवयात्रा निकल रही थी। सबसे आगे एक आदमी इम्मी की बाँह थामे चल रहा था। इम्मी के हाथ में एक छींका था जिसमें एक धुआँती मटकी रखी थी। पीछे–पीछे उसके पिताजी की अर्थी और अर्थी के साथ चलते बीस–पच्चीस लोग।

तीसरे दिन हमारी कक्षा के बड़े छात्रों – बालकिशन और राधेश्याम ने आपस में कुछ बात की और हम सबको बुलाकर कहा कि हम लोगों को इम्मी के घर 'बैठने' जाना चाहिए। तब तक मुझे पता नहीं था कि बैठने जाने का मतलब अफसोस जाहिर करने जाना होता है। बालकिशन और राधेश्याम के सुझाव से सब सहमत थे।

लेकिन जब अमीर वकील कुटुंबले के बेटे अशोक ने कहा कि सब सफेद कपड़े पहनकर जाएँगे, तो मामला जरा उलझ गया। सबके पास तो सफेद पेंट–शर्ट था भी नहीं, एक–दो के पास था भी तो धुला हुआ नहीं था या फटा हुआ था। दूसरी बात यह थी कि सफेद कपड़े पहनने के लिए स्कूल की छुट्टी के बाद पहले घर जाना पड़ता, और फिर घरवाले पता नहीं आने देते या नहीं। अधिकांश बच्चों के लिए स्कूल की छुट्टी के बाद स्कूल से सीधे इम्मी के घर जाना



ज्यादा सुविधाजनक था। वैसे भी इम्मी का घर स्कूल से ज्यादा दूर नहीं था।

तो अगले दिन हम लोग स्कूल से सीधे इम्मी के घर गए – बैठने। इम्मी का घर खूब सारे पेड़ों से घिरा एक खंडहरनुमा, लेकिन हवादार एक–मंजिला मकान था जो इस समय सूना पड़ा था। हम बाहर खड़े संकोच में पड़े ताकाझाँकी कर रहे थे। इतने में एक बड़ी उम्र की लड़की ने हमें देखा और पूछा, 'कौन चाहिए? इम्मी? आओ आओ। आ जाओ। इम्मी... तेरे दोस्त आए हैं।'

बोलते–बोलते लड़की मकान के पीछे कहीं चली गई।

हम चुपचाप सरकते हुए भीतर घुसे और कमरे के नंगे–ठंडे फर्श पर एक–दूसरे से सटे–सटे पालथी मारकर बैठ गए। चार–पाँच मिनट बाद इम्मी दिखाई दिया। अपने नाप से कहीं छोटा गुसा–मुसा सफेद कुरता–पजामा पहने, घुटा हुआ सिर और पीछे छोटी–सी चोटी। पहचान में नहीं आ रहा था। इम्मी जोर–जोर से बोलता हुआ भीतर आया, 'मैं सोच ही रहा था कि स्कूल से भी कोई न कोई तो आएगा जरूर। और? क्या हाल है? कैसा चल रहा है? कल गणित का टेस्ट हुआ था क्या? और गहलोत सर के क्या हाल हैं? स्टेट में सिलेक्ट करवा देते मेरे को तो कम से कम जूता और जर्सी तो मिल जाती। पर उनकी तो फरमाइशें ही गजब! अरे यार भार्गव आ रहा है क्या? मेरी गणित की कॉपी भार्गव के पास ही रह गई है। खैर, उससे कहना वही रख ले। अब मुझे उसकी जरूरत नहीं पड़ेगी!'

'तेरे पिताजी को क्या हुआ था इम्मी?' अशोक ने पूछा।

'उनको तो टीबी थी न! बहुत दिनों से थी।' इम्मी ने ऐसे कहा जैसे यह बात तो अन्य सभी की तरह हमें भी मालूम होनी चाहिए थी।

इतने में ही वह बड़ी लड़की पीतल के एक लोटे में ठंडा पानी ले आई। साथ ही पीतल का एक गिलास भी। प्यास तो हम सबको लगी ही थी। सबने पानी पिया।

फिर कुछ शोर जैसा सुनाई दिया तो इम्मी उठकर पीछे गया, तुरंत लौटकर आया तो हाथ में आठ–दस अमरूद थे। बोला – 'अमरूद खाएँगे? अपने बगीचे के हैं। लो, खा लो। कुछ अमरूद तोतों के कुतरे हुए हैं। मालूम है न, तोतों के कुतरे हुए अमरूद बहुत मीठे होते हैं। लो...' वह एक–एक अमरूद फेंकता गया, हम कैच करते गए। समझ में नहीं आ रहा था खाएँ या न खाए, पर इम्मी खुद खा रहा था। हमें सकुचाते देख उसने बेतकल्लुफी से कहा, 'अरे खाओ खाओ। ऐसा कुछ नहीं। हमारे यहाँ चलता है।'

संकोच के मारे हम धीरे–धीरे खाने लगे। अमरूद मीठे थे। और भूख तो लगी ही थी। इम्मी बोला, 'तोते हैं न! इत्ते आते हैं कि क्या बताऊँ! और खाएँ तो खाएँ, चलो कोई बात नहीं, पर साले कच्चे–कच्चे भी जरा सा कुतरकर नीचे गिरा देते हैं। हमने पेड़ पर जाली भी बिछाई, तो पट्ठे जाली को ही काट गए। और खाओगे? अरे यार, तुम लोग पीछे ही क्यों नहीं आ जाते? जक्कू को चढ़ा देंगे,

Scanned by CamScanner

वो तोड़–तोड़कर देता जाएगा। बाकी कोई मत चढ़ना। अमरूद की डाली बहुत कच्ची होती है।' बोलते–बोलते वह चल पड़ा। पीछे–पीछे हम...

घर के पिछवाड़े अमरूद के दो बड़े–बड़े पेड़ थे। फलों से लदे हुए। कुछ छोटे बच्चे अमरूद तोड़ और खा रहे थे वे हमें देखकर भाग गए। हम लोग भी अमरूद खाने में लग गए और थोड़ी देर के लिए भूल ही गए कि हम यहाँ अमरूद खाने नहीं, बैठने आए थे।

कोई घंटे भर बाद बाहर निकलने लगे तो मज्जू ने इम्मी से पूछा – 'इम्मी! तू स्कूल कब आएगा?' इम्मी बोला, 'अब नहीं आऊँगा।'

राधेश्याम ने पूछा, 'तो फिर क्या करेगा?'

इम्मी बोला, 'सब्जी का ठेला लगाऊँगा। जहाँ बाऊजी लगाते थे – भंडारी मिल के सामने – वहीं लगाऊँगा। काका गाँव से सब्जी लाते हैं। उनके दोनों बेटे हुकमचंद मिल के आगे लगाते हैं। मैं इधर लगाऊँगा। दिन के पचास रुपए भी कमाऊँगा तो बहुत है यार! मैं हूँ और माँ है। और है कौन? एक बहन थी, उसकी शादी कर दी। वैसे आदमी पढ़–लिखकर भी क्या करता है? काम–धंधा ही तो करता है।'

'और फुटबॉल?' किसी ने धीरे से पूछा। 'फुटबॉल से रोटी नहीं मिलती। समझे? कोई कितना ही बड़ा प्लेयर हो जाए...? समझे? ये खेल–वेल सब भरे पेटवालों की बातें हैं।' इम्मी चिढ़ गया। 'हो जाओ प्लेयर... लेकिन काम–धंधा तो तुम्हें करना ही पड़ेगा।'

इम्मी की बात सुनकर हम लोग चुप और उदास हो गए। लग रहा था जैसे वह हमको नहीं खुद को समझा रहा था। बोलते समय उसकी आवाज काँप रही थी और लग रहा था किसी भी पल वह रो पड़ेगा। राधेश्याम ने इम्मी को गले लगा लिया और कहा, 'तेरे पिताजी की डेथ का बहुत अफसोस हुआ इम्मी।' इम्मी बोला, 'सब लिखाकर लाते हैं भैया। जब खत्म हो जाती है तो हो जाती है। फिर रोओ चाहे छाती कूटो, चाहे जो भी करो।' इम्मी अपनी उम्र से बहुत बड़ा लग रहा था और एकदम आदमियों की तरह बोल रहा था। हम लोग चुपचाप और मुँह लटकाए बाहर निकल गए और चले आए।

चार–पाँच साल बाद एक शाम कुछ बच्चे स्कूल के मैदान पर फुटबॉल खेल रहे थे। तभी बारिश आ गई। अँधेरा–सा हो गया, लेकिन खेल बंद नहीं हुआ। कुछ बच्चे बारिश में तरबतर भीगते हुए भी खेल रहे थे। अचानक एक लंबा–चौड़ा आदमी पता नहीं कहाँ से आया और बच्चों के साथ खेलने लगा। वह बच्चों को छका रहा था और उससे लटकने–चिपकने के बावजूद बच्चे उससे गेंद नहीं छीन पा रहे थे। घंटे भर बाद वह आदमी अपने कपड़े निचोड़ता चुपचाप उधर चला गया जहाँ सड़क किनारे एक सब्जी का ठेला तेज बरसात में लावारिस–सा खड़ा था।

Scanned by CamScanner

# मधु कांकरिया

21वीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में सामाजिक संवेदना को अपनी संवेदना बनाने वाली मधु कांकरिया का जन्म 23 मार्च 1957 को कोलकाता के एक निम्न मध्यमवर्गीय जैन व्यापारी परिवार में हुआ। आपने कोलकाता के महिला कॉलेज से अर्थशास्त्र में एम. ए. किया। बचपन से पढ़ने का शौक था। अतः आप का साहित्य–लेखन की ओर झुकना स्वाभाविक था। आपने कहानी, उपन्यास, यात्रावृतांत, डायरी आदि विधाओं पर लेखन किया। परिणाम स्वरूप आपको 'मारवाड़ी समाज गौरव पुरस्कार' (2006), 'हेमचंद्र आचार्य साहित्य सम्मान' (2006), 'कथा क्रम सम्मान' (2008), हेमचंद्र स्मृति साहित्य सम्मान' (2009), 'विजय वर्मा कथा सम्मान' (2012) आदि विविध पुरस्कारों से गौरवान्वित किया गया है।

**कहानी संग्रह** – 'बीतते हुए' (2004), 'भरी दोपहरी के अंधेरे' (2007), 'और अंत में ईशू' (2008)।

**उपन्यास** – 'खुले गगन के लाल सितारें' (2000), 'सलाम आखिरी' (2002), 'पत्ताखोर' (2005), 'सेज पर संस्कृत' (2008)।

**यात्रा वृतांत** – 'बादलों में बारूध।

**डायरी** – 'शहर जादू', 'बंजारा मन और बंदिशे'।

**सामाजिक विमर्श** – 'अपनी धरती अपने लोग'।

'सबसे कठिन काम' कहानी डॉ. मधुसूदन की अपने पेशे के प्रति सत्यनिष्ठा को बयान करती है, जिसे बाहर तो सम्मान मिलता है, लेकिन अपने घर में नहीं। यहाँ तक कि चुनाव का परिणाम लोगों के प्रति उसकी सेवा भाव वृत्ति को भी नष्ट कर देता है।

कहानी का पात्र डॉ. मधुसूदन एक ईमानदार, कर्त्तव्यपरायण, परिश्रमी और सेवाभावी वृत्ति का व्यक्तित्व है। वह अपनी तरफ से गरीब बस्तियों में मुफ्त दवाइयों और ऑपरेशन की व्यवस्था करता है। उसकी श्रम निष्ठा और सत्य से उसे मोहल्ले में काफी प्रसिद्धि और प्रशंसा मिलती है। यहाँ तक कि सुहागरात में भी अपनी पत्नी की भावनाओं की अपेक्षा किसी की जान बचाना वे बेहतर समझते है। वे पत्नी को समझाते हुए कहते हैं कि डॉक्टर बनना बहुत कठिन काम है, लेकिन पत्नी के हिसाब से उससे भी कठिन है, अच्छा पति बनना। डॉक्टर साहब का बाहर लोगों में सम्मान तो बढ़ता है, लेकिन अपने घर में नहीं। डॉक्टर साहब

Scanned by CamScanner

के जीवन में एक नया मोड़ आ जाता है, जब वे लोगों के विश्वास के वलबूते पर निर्दलीय के रूप में चुनाव लड़ते हैं, लेकिन उन्हें केवल 55 वोट मिलते हैं। यहाँ तक कि उनकी जमानत भी जप्त हो जाती है। इस पचपन के हादसे ने उनके जीवन की धारा को ही वदल दिया था। इस घटना ने डॉक्टर साहव को झकझोर दिया। तभी से उन्होंने आधी फीस और मुफ्त ऑपरेशन की सुविधा भी वंद कर दी। लोगों के प्रति उनका विश्वास टूट गया था। ऐसे में पड़ोसी की चार वर्षीया लड़की को डायरिया हुआ था, उसे बचाने के लिए लेखिका को जरूरत थी डॉ. साहब की मदद की। लड़की को बचाने के लिए लेखिका की विनती के वावजूद भी डॉक्टर बच्ची के घर नहीं जाते और लेखिका डॉक्टर को लिये बिना जाना नहीं चाहती। आखिर डाक्टर का यह कहना कि "वहुत कठिन है डाक्टर वनना" और यह सुनकर लेखिका का यह सोचना कि "कितना कठिन है इंसान वनना" मानवता की श्रेष्ठता और आवश्यकता पर वल देता है। भले ही हर एक को अपनी–अपनी जगह अपना कर्तव्य कठिन लगता हो लेकिन सही मानें तो सबसे कठिन है इंसान वनना, जिसकी आज अत्यंत आवश्यकता है।

डॉ. मधुसूदन - कोलकता
मधुमिती - पत्नी

# 11

# सबसे कठिन काम

– मधु कांकरिया

डॉक्टर मधुसुदन की कहानी मैं जरूर कहना चाहूँगी, क्योंकि ऐसी कहानियाँ जल्दी पीछा नहीं छोड़ती हैं। वैसे इन दिनों डॉक्टर साहब पर एक अजीब ही भूत सवार है। इन दिनों अक्सर जिंदगी के सवालों में उलझे रहते हैं वे। क्या है जिंदगी ? क्या है खुशी ? क्या है नियति ? क्या सिर्फ संयोग है जिंदगी...? जैसे सवाल हर पल उठते–वैठते पीछा करते रहते हैं डॉक्टर साहब का। भीतर का तापमान इतना वढ़ जाता है कि एयरकंडीशनर चेंवर में भी माथे पर पसीने की वूँदें छलछला उठती हैं। कई बार सोचते हैं कि लिख डालें अपनी आत्मा का इतिहास। लिखने के लिए डायरी खोलते भी हैं, कलम भी उठाते हैं अपनी अंतरात्मा में प्रवेश भी करते हैं कि तभी सब कुछ गड़वड़ा जाता है। 'वस पचपन, वस पचपन...' लिखकर शून्य में ताकने लगते हैं। जव से इस 'पचपन' का हादसा हुआ है जीवन की धारा ही पलट गई है।

शांत झील से खौलती हुगली नदी वन गए हैं डॉक्टर मधुसुदन! अकेले होते ही सोच नाम का कीड़ा कुलवुलाने लगता है – क्यों हुआ ऐसा? कहाँ चूके, कहाँ कूदें की सुख–चैन के सारे परिंदे ही उड़ गए उनकी मुंडेर से। वाघ की तरह झपट्टा मारने लगती हैं स्मृतियाँ। तहखाने में उतरते–उतरते एकदम नीचे उतर आते हैं डॉक्टर माथुर।

तव नए–नए डॉक्टर वने थे वे। वचपन से देखा एक स्वप्न पूरा हुआ था। गले में स्टेथस्कोप झुलाने का। एक स्वप्न क्या पूरा हुआ, आने वाले दिनों में स्वप्नों की पूरी फसल ही लहराने लगी। स्वप्न था अपने मुहल्ले और कोलकाता को पूरी तरह निरोगी वना देने का। अपने स्वप्न का पूरा नक्शा दिमाग में था उनके। कहाँ हेल्थ क्लव खुलवाना है। कहाँ निःशुल्क दवाइयों की व्यवस्था करनी है। कई मेडिकल रिप्रेजेंटिटिव से संपर्क किया, गरीव वस्तियों के लिए मुफ्त दवाइयों और मुफ्त ऑपरेशन की व्यवस्था की। गंधाती, मच्छरों–मक्खियों से वजवजाती, गंदगी और कचरे के ढेर पर आवाद वस्तियों में हेल्थ और हाइजिन से संवंधित कई डॉक्युमेंट्री दिखाई। लोगों को और खुद को भी हर पल प्रेरित करने के लिए अपने

Scanned by CamScanner

चेंबर की मुख्य दीवार के बीचोंबीच बड़े–बड़े अक्षरों में लिखवाया, 'पहला सुख निरोगी काया'। खुद के लिए उन्होनें नियम बनाया, सप्ताह में दो दिन निःशुल्क देखेंगे। कुछ रोगियों से आधी फीस लेंगे और जो पूरी तरह समर्थ हैं सिर्फ उनसे ही पूरी फीस लेंगे। कितने भी थके–हारे क्यों न हो, हर जरूरी नाइट कॉल को अटेंड करेंगे। बिना चिकित्सा किसी को मरने नहीं देंगे।

देखते ही देखते बारिश की तरह बरसने लगे वे। हरियाली की तरह फैलने लगे और देखते ही देखते बन गए वे हर दिल अजीज!

भीतर सत्य का जोर था, आँखों में झिलमिलाते स्वप्न थे। इस कारण तेज गति से स्वप्न और श्रम का सफर चलने लगा था जिसमें पहला ब्रेक लगा – शादी की सुहागरात में। मधुयामिनी में मधुमती की भूमिका में आए ही थे कि कर्कश फोन घनघना उठा। दुल्हन ने जैसे ही सुना 'आ रहा हूँ' उसकी गालों की सुर्ख लालिमा कालिमा में बदल गई। सतरंगी स्वप्नों की उड़ान शुरू हुई ही थी, मादक कामनाओं ने पूरी तरह अँगड़ाई ली भी नहीं थी, अधमुँदी आँखें पूरी तरह मुँदी भी न थी कि यह जानलेवा जुदाई! उद्दाम आवेग से भरी अतृप्त आत्मा चित्कार कर उठी – आज की रात मत जाओ। फूलों की सेज, दुल्हन की आँखों से छिटकती कामनाओं की चाँदनी, अपना बेकाबू मन, अधपीया मधु का प्याला...। कुछ भी बाँध नहीं पाया डॉक्टर मधुसुदन को, 'डॉक्टर बनना बहुत कठिन होता है प्रिय, किसी की जान की कीमत पर मैं सुहागरात कैसे मना सकता हूँ? चित्तरजन के रसगुल्ले की सारी मिठास को अपने कंठ में उंड़ेलते हुए बोले डॉक्टर मधुसुदन। जब तक मरीज को आई सी यू में भर्ती करवा कर घर लौटे, डॉक्टर साहब ! तब तक मुर्गा बाग दे चुका था और दुल्हन की मुँह दिखाई की रस्म शुरू हो गई थी। रात फिर आई पर वो बात नहीं आ पाई। दुल्हन के मन का कोई कोमल तार–तार हो चुका था। डॉक्टर साहब तो फिर भी सुहागरात में शयन सुख का त्याग कर मुहल्ले के हीरो बन गए थे लेकिन दुल्हन का बहुत जतन से सँजोया हर रात देखा स्वप्न पहली ही रात टूट–टूटकर बिखर चुका था।

टहनी से झरते पत्तों की तरह बीतते रहे दिन। कभी चट्टान से भारी तो कभी परी के पंखों से भी हलके। शतरंगी घोड़े की तरह स्लो मोशन में अढ़ाई–अढ़ाई कोस चलती रही जिंदगी। मोहल्ले के स्वास्थ्य के प्रति समर्पित डॉक्टर ने बनारस के मगही पान की तरह अपने हृदय की नकारात्मक प्रवृतियों को दिन पर दिन काटते–छाँटते पूरी तरह तराश लिया था। इस कारण हर वक्त पगली हवा से बौराए रहते। कभी इस गली, कभी उस गली। कभी इस घर, कभी उस घर। कभी गीले बाल, कभी बिखरे बाल। कभी मोजे पहने तो कभी बिना मोजे पहने। कभी चाय पीए, तो कभी बिना चाय पीए। कभी यह हेल्थ स्कीम, तो कभी वो हेल्थ स्कीम। खुद की जिंदगी में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया सिवाय इसके कि बिना धूम–धमाका के एक पति से पिता भी बन गए वे और घर–बाहर



दो अलग–अलग दुनिया में जीते रहे। मरीजों के बीच रहते–रहते वे इतना कम बचे थे कि घर ने उन्हें लगभग अनुपस्थित ही मान लिया था। इसलिए घर के कोने–कोने में जहाँ उन्हें अपने खिलाफ शिकायत और ठंडी उदासीनता खड़ी मिलती वहीं बाहर हर चप्पे चौराहे पर लोग, 'खूब भालो डॉक्टर मोधुदा' के लिए प्रशंसा और सम्मान के गुलदस्ते लिए खड़े मिलते। मोहल्ले में शायद ही कोई ऐसा घर होगा जहाँ डॉक्टर मधुसूदन के कदम न पहुँचे हों, मौत के सन्नाटे में जिंदगी न लहरा उठी हो, चाहे गगनचुंबी इमारत हो या लेबर कॉलोनी हो या झुग्गी झोपड़ियाँ हो। चाहे सूखे, फटेहाल और पिचके पेट वाले हों या चिकने, तोंदियल फुले पेट वाले हों। डाइग्नॉस्टिक सेंटर वाले डॉक्टर मधुसूदन को भगवान मानते थे क्योंकि किसी भी टेस्ट के लिए न तो उन्होंने कभी कमीशन माँगे और न ही कभी उन्होंने रिपोर्ट को बदलने का दुराग्रह ही किया।

पर घर उन्हें अपनी औकात दिखा देता। कभी शादी की सालगिरह पर पत्नी के लिए उपहार लाने से चूक जाते या बेटे के जन्म दिन पर घर जल्द नहीं आ पाते, तो कभी बेटे की सेकेंड हुगली ब्रिज दिखाने की जिद पूरी नहीं कर पाते और जब ऐसे बढ़ते अपराधों के चलते घर में उमस बहुत बढ़ जाती तो वे घरवालों के मनोरंजन के उद्देश्य से अपने रोगियों के अनुभव सुनाते हुए कहते – जानते हो आज मैंने एक रोगी को कहा दिन में एक गोली दो बार, सुबह–शाम लेना तो गधा पूछता है – एक गोली को आधी–आधी कर दो बार लूँ क्या? एक रोगी को नींद की गोली दी तो पूछता है कि नींद के पहले लूँ या बाद में लूँ। हा हा हा! लेकिन जब देखते कि घरवालों को न उनमें दिलचस्पी रह गई थी और न ही उनके रोगियों में तो कभी वे गाँवों में फ्री मेडिकल कैंप लगाने निकल पड़ते, तो कभी पत्नी और बेटे को वही जुमला पकड़ा देते 'बहुत कठिन है डॉक्टर बनना'। वे इतना डूब कर बोलते इसे कि उनका अंग–अंग लय–ताल में होता। पत्नी कुढ़ जाती और मुँह फुलाकर नहले पर दहला जड़ देती, 'उससे भी कठिन है अच्छा पति बनना'। मानिनी पत्नी कुछ दिन मान करती। काश! चाभी के गुच्छे की तरह पति को भी पल्लू से बाँध रख पाती! उन नशीले, रंगीन और मादक स्वप्नों को याद कर आँसू बहाती जो उसने 'फूल तुम्हें भेजा है खत में 'गाते हुए कॉलेज की सखियों के साथ कभी देखे थे। लेकिन फिर वही घोड़ा वही मैदान। अपने संत से पति को क्षमा कर देती। जैसा भी है पति पूरा का पूरा उसका है – सोचती और ईश्वर से हॉट लाइन जोड़ लेती।

दिन बीत रहे थे। टूट–टूट कर भी जुड़ जाती लय–ताल जिंदगी की। मध्यवर्गीय मानसिकता सब कुछ स्वीकार कर लेती। चाय के प्याले में शक्कर दिन पर दिन कम होती जा रही थी, पर वाणी में डॉक्टर के दिन पर दिन शक्कर घुलती जा रही थी। लेकिन एक मटमैली शाम सचमुच कुछ ऐसा हो गया कि आसमान में उड़ते गरुड़ का ध्यान भटक गया और सारी लय–ताल बिगड़ गई।

Scanned by CamScanner

यह वह समय था जब इतिहास करवट बदल रहा था और अन्ना आंदोलन की पृष्ठभूमि से उपजी एक नई नवेली पार्टी ने देश के प्रतिवद्ध युवाओं को राजनीति में सक्रिय योगदान के लिए आह्वान किया था। फिजाँ में बदलाव की अकुलाहट थी। पर पीड़ा की जाने कैसी अकुलाहट इस आंदोलन ने पैदा कर दी थी कि डॉक्टर के वृत्त में सिमटी मीनारें टूटने लगी और पहली बार इस सोच ने असर डाला कि देश के लिए यदि सचमुच कुछ करना है तो देश को इन भ्रष्ट नेताओं के साए से मुक्त करना होगा। मैं चाहे कितनी भी खुशबू फैलाने का प्रयास क्यों न करूँ, बदबू के स्रोतों को जब तक बंद न किया जाएगा मेरे सारे किए कराए पर माटी गिरती रहेगी।

भीतर मचलता कुछ करने का जोश–जज्बा, होठों पर मचलती कॉलेज के दिनों की महबूब पंक्तियाँ, 'हम लड़ेगें साथी/उदास मौसम के खिलाफ/हम लड़ेगें जब तक दुनिया में/लड़ने की जरूरत बाकी है' और बाहर लगातार बढ़ता मित्रों और शुभचिंतकों का दबाव, एक चमकती शाम उन्होंने एक अभूतपूर्व निर्णय लिया, 'हम लड़ेंगे भ्रष्टाचार के खिलाफ, हम लड़ेंगे विधान सभा का चुनाव। अपने इस निर्णय पर वे खुद भी कम हैरान नहीं थे। उधर जाने कैसे टीएमसी और सीपीएम दोनों मुख्य दलों को खबर लग गई डॉक्टर के चुनाव लड़ने की इच्छा की। दोनों ने ऑफर किया कि वे उनकी पार्टी का प्रतिनिधित्व करे। पर भ्रष्टाचार मुक्त भारत का स्वप्न देखने वाले डॉक्टर ने ठानी कि वे निर्दलीय ही चुनाव लड़ेंगे।

और वे सचमुच कूद पड़े चुनावी मैदान में, पूरे संकल्प और पवित्रता के साथ।

भीतर था सत्य और अपने तीस वर्षीय जीवन के सत्कर्मों की पूँजी का जोर, इस कारण अपनी जीत के प्रति इतने आश्वस्त थे वे कि चुनाव के अत्यंत सरगर्मी के दिनों में भी प्रचार से दूर भागते रहे। मरीजों की उपेक्षा कर चुनावी प्रचार में आस्था नहीं थी उनकी, लिहाजा थोड़ा बहुत प्रचार जो भी किया मित्रों और शुभचिंतकों ने ही किया। मित्र समझाते – आजकल बिना प्रचार, मीडिया की ठकुरसुहाती और विज्ञापन के कुछ नहीं होता, बिना माँगे तो माँ भी रोटी नहीं देती तो लोग क्यों देंगे तुम्हें वोट? आत्मविश्वास से दिपदिपाते चेहरे पर छलक आई पसीने की बूँदों को पोंछते हुए वे कहते – तीस साल क्या कम हैं मेरे विज्ञापन के लिए, कौन सा घर है जहाँ मेरी सेवा नहीं पहुँची? बोलते–बोलते गर्व से उनकी नाक फूल जाती। चाय बैगुनी (बैगन का भाजा) खाते मित्र दबी जबान से कहते, जैसी अभी लहर चल रही है इन दिनों और जिस प्रकार का आक्रामक प्रचार है उनका, हमें रिस्क नहीं लेनी चाहिए। लेकिन डॉक्टर साहब अपनी कड़वी दवा पर अड़े रहते – सच्चाई को नगाड़ों की जरूरत नहीं होती और तैश में आ अधपीयी प्याली छोड़ निकल पड़ते।

सारी खुदाई एक तरफ, डॉक्टर मधुसूदन एक तरफ। और तो और ऐन



चुनाव के दिन भी एक इमरजेंसी केस में फँसे रहे और किंसी प्रकार दौड़ते भागते दिया अपना वोट। दोस्त, रिश्तेदार, शुभचिंतक आशंकित लेकिन डॉक्टर साहब पूरी तरह आश्वस्त। उनके दोनों मुख्य प्रतिद्वंद्वी कुख्यात गुंडे, ऐसे में कौन रोकेगा उनके विजय रथ को? और तो और मतगणना के दिन भी निरासक्त योगी की तरह निकल पड़े रोगियों को देखने। रोगियों को देखते–देखते ही हाजमा बिगड़ गया, वी.पी. खतरे की सीमा छूने लगा। टीवी बोला, मोबाइल बोला, घर बोला – कि वे सारे प्रतिद्वंद्वियों से पीछे चल रहे थे। घर पहुँचे तब तक वे अपनी जमानत जब्त कर चुके थे। उन्हें मिले थे सिर्फ पचपन वोट। सिर्फ पचपन!

भीतर कुछ इतने जोर से टूटा कि उसकी आवाज़ को सारे परिवार ने सुना। झाँव–झाँव करते गली के कुत्ते ने सुना। खिन्न और सुन्न डॉक्टर ने इस घटना के बाद अपने को अपने घर में ही कैद कर लिया। वे न किसी से मिले, न कुछ बोले। न किसी से कुछ शिकवा शिकायत ही की। और पूरे 'पचपन' घंटे के बाद जब वे अपने घर से बाहर निकले तो सब कुछ वैसे ही था। बाहर गंदगी पर जिंदगी पसरी हुई थी। सड़क पर पगली वैसे ही मूत रही थी और पुलिसवाला उसे डंडे से खदेड़ रहा था। हाथ रिक्शावाले वैसे ही सड़क पर बदहवास दौड़ रहे थे। हाबड़ा पुल वैसे ही शान से खड़ा था। काली मंदिर में वैसे ही बकरे की बलि चढ़ रही थी। लेकिन डॉक्टर की केमिस्ट्री बदल चुकी थी। वे अब दूसरे ही इनसान थे। उनकी जिंदगी पर गंदगी पसर गई थी। जिंदगी में पहली दफा वे फुर्सत के इतने बड़े साम्राज्य में रहे इस कारण जब वे निकले तो सारे अंतर्द्वंद्व, ऊहापोह, भीतरी उठापटक...। सबसे मुक्त उनका एक नया अवतार ही सामने था।

जीरो फीस और आधी फीस की सुविधा अब खत्म थी। सबको समान भाव से देखते हुए चेंबर फीस अब उन्होंने दुगुनी कर दी थी। होम विजिट चौगुनी थी। पत्नी और परिवार का ख्याल रखते हुए नाइट विजिट उन्होंने खत्म कर दी थी। शनिवार और रविवार की मुफ्त सेवाएँ भी उन्होंने बंद कर दी थी। और जितने भी हेल्थ क्लब उन्होंने चला रखे थे सब से त्यागपत्र दे दिया था उन्होंने। अपनी अपमानजनक हार का बदला वे अपने भीतर बसे इनसान से चुन–चुन कर ले रहे थे। और उसे पूरी तरह कुचलने में लगे थे। भीतर का शैतान अब उनके कंधों पर चढ़ उनका गला दबोचने लगा था। अपनी मटर सी आँखों को झपका–झपकाकर वे रह–रहकर गुर्रा रहे थे – अब तुम्हें वही मिलेगा मुहल्ले वालों जिसके लायक हो तुम। उफ! तुम्हारी सेवा करते–करते मैंने खुद को, परिवार को खो दिया, कोई इतवार–इतवार सा नहीं आया। क्या मिला मुझे – पचपन वोट! क्यों किया ऐसा? दिन–रात एक युद्ध चलता रहता उनके भीतर, साँस फूली रहती, नसें तनी रहती। वी.पी. बढ़ता रहता। खाली होते ही तन्हाइयाँ सवाल करने लगतीं उनसे, काश नहीं लड़ा होता उन्होंने यह चुनाव! पर नहीं लड़ते तो पता कैसे चलता लोगों का यह रंग? क्या ऐब था उनमें जो मिला उन्हें यह फरेब! ओह! किस गलतफहमी

Scanned by CamScanner

में धँसे हुए थे वे कि लोग उन्हे फरिश्ता मानते हैं! सारे छिलके उतर गए! उफ हारे तो भी किससे? एक गुंडे से! और कैसी शर्मनाक हार!

धीरे–धीरे वे एक चुप्पी में तबदील होते जा रहे थे। कोई नमस्कार भी करता तो उसे घूरते और सोचते – जिन पचपन लोगों ने वोट दिया उन्हें क्या उसमें होगा वह भी?

उन्ही दौड़ते–भागते दिनों में मुझे जरूरत पड़ गई थी डॉक्टर साहब की मदद की। हमारे पड़ोसी की चार वर्षीया लड़की को एकाएक डायरिया हो गया था। कई बार पड़ोसी ने फोन किया था, लेकिन डॉक्टर साहब ने आने से मना कर दिया था। कुछ खास परिवारों को डॉक्टर साहब ने अपनी लिस्ट से बाहर कर दिया था कि किसी भी हालात में वे उन्हें अपनी सेवाएँ नहीं देंगे। दुर्भाग्यवश यह परिवार भी उनमें से एक था। अभी तक डॉक्टर साहब के अलावा किसी दूसरे डॉक्टर का मुँह भी नहीं देखा था अब उस घड़ी में बुलाएँ भी तो किसे? हिम्मत कर मैं आई उनके चेंबर में, घंटे भर बाहर बैठी रही और जब सारे रोगी चल गए तब जाकर उनसे बात हुई। थके–थके, उदास और हारे–हारे से डॉक्टर साहब के चेंबर में जब मैं घुसी तो एक बार तो उन्होंने मुझे भी रोगी ही समझा। मैंने अपने आने का मकसद बताया और गुजारिश की – गुड़िया की हालत गंभीर है, आपको चलना होगा। डॉक्टर साहब ने डायरी दिखाई। कुछ पल सोचते रहे, फिर हथोड़े सी गहरी उनकी आवाज गूँजी – पारवो ना, आमी खूब व्यस्त (नहीं जा सकूँगा, मैं बहुत व्यस्त हूँ) देखो एक घंटा भी खाली नहीं हूँ, कैसे जाऊँ? मैंने दुबारा गुजारिश की तो वे चिढ़ गए। अजीब और बेबस निगाहों से घूरा मुझे, टेबल पर रखी गिलास से कुछ घूँट गटके। रह–रहकर एक वहशी हरी कौंध सी चमक रही थीं उनकी गहरी काली आँखें। और कट–कटकर कुछ शब्द गिर रहे थे उनके मुँह से 'अमार छाडे तो अनेक डॉक्टर आछे उनाके डेके नाओ (मेरे अलावा भी तो ढेरों डॉक्टर हैं बुला लो उनको)। मैंने हिम्मत कर फिर जिद की – मैं आपको लेकर ही जाऊँगी। वे बोले कुछ नहीं, उनके चेहरे पर पल भर के लिए तकलीफ और दर्द उभरे लेकिन दूसरे ही पल उनकी आँखों में काँटे उगने लगे, समझ गई यह डॉक्टर नहीं उनका प्रतिशोध बोल रहा है, कहना चाहती थी – डॉक्टर साहब किसकी गलती की सजा आप किसको दे रहे हैं कि तभी डॉक्टर साहब ने नाक तक खिसक आए चश्मे को ऊपर उठाते हुए कुढ़ते हुए कहा – उफ बहुत कठिन है डॉक्टर बनना!

और मैं सोच रही थी कि कितना कठिन है इन्सान बनना!

●

Scanned by CamScanner

# दामोदर खड़से

बहुमुखी प्रतिभा के धनी रचनाकार डॉ. दामोदर खड़से का जन्म 11 नवंबर 1948 में छत्तीसगढ़ के सरगुजा जिले के पटना गाँव में हुआ। सृजनात्मक, आलोचनात्मक, लेखन के साथ–साथ अनुवाद के क्षेत्र में भी आपका महत्वपूर्ण योगदान रहा है। दया पवार के 'बलन्तु' शीर्षित आत्मकथा के अनुवाद 'अछूत' द्वारा मराठी दलित आत्मकथा साहित्य को हिंदी जगत को परिचित कराने का सर्वप्रथम प्रयास आपने ही किया हैं। आपने कहानी, उपन्यास, कविता, यात्रा व भेंटवार्ताएँ, अनुवाद आदि विधाओं पर लिखनी चलाकर हिंदी साहित्य को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनके साहित्यिक योगदान को लेकर केंद्रीय हिंदी निदेशालय, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी, हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, विश्व हिंदी न्यास, न्यूयॉर्क, केंद्रीय हिंदी संस्थान आदि संस्थाओं द्वारा सम्मानित किया गया है।

**प्रकाशित कृतियाँ–**

**कहानी संग्रह–** 'भटकते कोलंबस', 'पार्टनर', 'आखिर वह एक नदी थी', 'जन्मांतर गाथा', 'इस जंगल में', सम्पूर्ण कहानियाँ आदि।

**उपन्यास**–'काला सूरज', 'भगदड़'।

**कविता संग्रह–** 'अब वहाँ घोसले हैं', 'जीना चाहता है मेरा समय', 'सन्नाटे में रोशनी', 'तुम लिखो कविता', 'नींद कभी नहीं सुखाती', 'पेड़ कभी अकेले नहीं होते।'

**यात्रा व भेंट वार्ताए–** 'जीवित सपनों का यात्री', 'एक सागर और।'

**अनूदित पुस्तकें–** 'अछूत', 'रामनगरी', 'बीरबल साहनी', 'कालचक्र', 'पराया', 'ऐसे लोग ऐसी बातें', 'सवाल अपना–अपना', 'संघर्ष', 'भूले–बिसरे दिन', 'विशिष्ट मराठी कहानियाँ', 'शुभ वर्तमान', 'बारोमास', 'झुंड', 'मन–सर्जन'।

'साहब फिर कब आएंगे माँ ! कहानी में एक दीन–दलित, गरीब और बर्तन मांजने वाली स्त्री की वेदना एवं दरिद्रता को अभिव्यक्त किया गया है। दरिद्रता से ना कोई अपना, न बच्चों का, न परिवार का ठीक से पालन–पोषण कर सकता है न बच्चों की पढ़ाई की व्यवस्था।

कहानी में मंगली नामक स्त्री की गरीबी से त्रस्त वेदना को चित्रित किया गया है, जो बरसों से होटल में बर्तन मांजने का काम करती है। घर में खाने की रोज की किल्लत उसमें पति का शराब पीकर गालियाँ देना, मारपीट करेना आदि

Scanned by CamScanner

सुझायी कि किसी और होटल से इसका इन्तजाम किया जाए, लेकिन इससे दूसरे होटल को इसका श्रेय जा सकता था, इसका अपप्रचार भी हो सकता था। होटल की अपनी प्रतिष्ठा है। और आजकल अखबार भी .... ओफ.... इनको सामग्री पता नहीं क्यों नहीं मिल पाती। वे ऐसी बातें जरूर छाप देते हैं। आखिर वहाँ पत्रकार भी होंगे। कोई विरोधी उनके कान में यह डाल सकता है।

इतने में मुख्य रसोईये ने मैनेजर से मुलाकात की। प्रसन्न था यह। विजयी मुस्कान बता रही थी कि उसने कोई समाधान पा लिया है, "सर, बात बन जाएगी....मैंने मंगली से बात की..."

मैनेजर ने चौंककर पूछा, "यह मंगली कौन है?"

"सर, वो बर्तन माँजने वाली।"

"आप निश्चिन्त रहें सर.....सब इन्तजाम हो जाएगा।"

मैनेजर ने तुरन्त होटल मालिक को बताया और सबने राहत की सांस ली। आज मंगली की स्थिति होटल के 'सेफ' की तरह हो गयी। अचानक महत्व मिलने पर वह कुछ हड़बड़ायी। आज उसे खाना पकाना है। किसके लिए, उसे नहीं मालूम, पर आज उसकी जरूरत महसूस हुई, इससे उसे बहुत अच्छा लगा। प्रसन्न हुई वरना होटल के पिछवाड़े ढेरों वर्तनों के बीच वह अपनी साथिनों के साथ बर्तन माँजती रहती और जूठन की भी मोहताज रहती। प्लेटें उठाने वाले वेटरों तक ही सारा अच्छा जूठन गायब हो जाता, आज तो वह खुद पकाएगी, लेकिन उस पर रसोइयों का विश्वास नहीं था कि वह मुख्य मेहमान को सचमुच खुश कर सकेगी, परन्तु मंगली में आत्मविश्वास था।

मंगली को सारा सामान मुहैया किया गया। कल सुबह खास मेहमान के भोजन का भार उस पर था। इसलिए अचानक आज उसकी हैसियत बढ़ गयी थी। आज काम करते हुए किसी ने उसे नहीं डांटा। रात को घर लौटते समय उसे भोजन दिया गया। उसने नहीं खाया। छोटे बेटे की याद आ गयी। बंधवा लिया उसने पूरा भोजन आज अचानक अपने लिए इतना सम्मान पाकर वह फूली नहीं समा रही थी। हालांकि उसे बचा भोजन ही दिया गया था, पर इसे क्या फर्क पड़ेगा। वह कितने दिनों बाद अपने बच्चों को ठीक से खिला पाएगी और इतना बढ़िया खाना पाकर वे कितने खुश होंगे।

होटल से निकलते समय उसे कितनी बार हिदायें दी गयी। वह चुपचाप सुन रही थी। जिसे आज तक रसोई में घुसने न दिया गया हो, उसे कल भोजन बनाना है– मक्के की रोटी और साग.....

उसने सबको अपनी ओर से आश्वस्त किया। आश्वस्त क्या करना था। बस गर्दन झुकाकर हामी भरनी थी।

भोजन का प्लास्टिक का बैग हाथों में लेकर कितनी प्रसन्न थी वह। उसके पैर अचानक पंख लगने लगे उसे। घर की ओर तेज कदमों से निकली वह।



बार–बार प्लास्टिक की थैली को ठीक से टटोलती–इसमें क्या–क्या होगा ... कितना होगा। तीनों बच्चों को पूरा पड़ेगा या नहीं.... पता नहीं किस–किस बात का अन्दाज लगाकर वह अपनी झोंपड़ी की ओर चल पड़ी।

होटल से बाहर की दुनिया उसके लिए चिर–परिचित है। बिल्कुल बाहर ही भिखारियों की भूखी आँखें देखने का उसे मौका नहीं मिलता। आज भिखारियों की ओर उसने देखा परन्तु भिखारी उसकी ओर क्यों देखते ? वे अपने ग्राहक तलाशने में जूटे थे। दूसरे लोगों को देखते ही भिखारियों का हुजूम अपना राग अलापने लगता। प्लास्टिक की थैली को उसने कब पोटली बना लिया, उसे भी नहीं मालूम। बगल में मजबूती के साथ उसने दबा लिया। अचानक हीं उसके मन में आया कि कोई इसे झपट ले तो वह क्या कर लेगी, परन्तु किसी भिखारी ने उसकी ओर देखा तक नहीं। फिर भी उसके कदमों में एक बेचैनी थी, जल्दी घर पहुँचने की। आज उसका आदमी भी नहीं घर पर। वह चौकीदार है और आज उसकी रात–पाली है। कितना अच्छा होता, वह भी आज घर पर होता। बस, खाने का दृश्य ही उसकी आँखों के सामने घूम–घूम जाता।

रास्ते में कई–कई बार उसके दिमाग में मक्के की रोटी और सरसों के साग को बेहतर ढंग से बनाने के विचार उभरते, परन्तु वे ज्यादा देर तक न टिकते। बच्चों के चेहरे दिमाग में उभरते ही उन्हें बगल में दबाया खाना खाते, वह देखती होती। गन्ध भी कम अच्छी नहीं थी।

बहुत दिन बाद उसे अपना ही घर दूर लगने लगा। कितनी देर से चल रही है वह ! रोज घर जाते समय उसके मन पर बोझ होता, खाना बनाने का। बच्चे आसपास से लकड़ियाँ चुन लाते थे। आदमी अक्सर शराब पीकर आता। घर में खाने की रोज किल्लत। घर पहुँचने पर बच्चों का किसी से झगड़ा। उसका काम से लौटना– एक थका शरीर और अभावग्रस्त निराशा के अलावा कुछ न होता। इसलिए घर भी कम शक्ति का चुम्बक ही होता। वह भारी कदमों से घर की ओर निकलती पर आज स्थिति उल्टी थी। घर भाग रहा था उससे और वह उतावली हो रही थी, घर पहुँचने के लिए।

घर पहुँची और छोटे बेटे को बेतहाशा चूमने लगी। दो साल का होगा। उसे छह साल की बेटी सँभालती है। दस साल का बड़ा बेटा पिछले दिनों से होटल के एक ठेले पर काम करता है। पानी और चाय पहुँचाता है वह। अभी तक वह घर नहीं लौटा था। पहाड़ की तराई पर बसी यह झोंपड़ पट्टी बहुत घनी थी। उसने झट टीन का दरवाजा खींच लिया और ढिबरी जलाकर दोनों बच्चों को दुलारने लगी। थैली खोली तो उसमें काफी खाना था, परन्तु इतना भी नहीं था कि पाँचों के लिए पूरा पड़े। फिर भी उसने थोड़ी मिठाईनुमा चीजें निकालकर अलग रख दी, अपने .....और बड़े बेटे के लिए। कुछ पुलाव और रोटी–साग दोनों बच्चों को परोसा। ऐसी रोटी की ....बच्चों को पहली बार करीब से मिल रही थी।

Scanned by CamScanner

उसे तो फिर भी कभी–कभी कुछ मिल जाता था होटल में, पर चीजें खराब हो जाने पर ही उस तक पहुँच पाती।

बड़े बेटे के आने तक वह जागती रही। उसी के साथ थोड़ा खाना खाया। बेटा थका हुआ था। खाना खाते ही सो गया। अब वह अकेली रह गयी। बच्चे खाकर सो गये। उनके चेहरे का सन्तोष उसे सुख दे रहा था। अब उसके दिमाग में कल के भोजन का एक–एक दृश्य घूमने लगा।

पति के न होने के कारण वह खाना भी न खा पायी। बच्चों के साथ ..... उतना ही। अकेले खाना उसे कुछ अपराध–सा लगने लगा। सुबह जल्दी उठने की मजबूरी में वह आज जल्दी सोना चाहती थी। आज सुबह का बचा–खुचा खाकर वह भी सोने की कोशिश करने लगी। आज उसे खाना नहीं बनाना पड़ा, यह उसके लिए कम सुखद नहीं था।

आज की रात भी समूची झोंपड़पट्टी में कहीं न कहीं गाली–गलौज, झगड़ा–फसाद और चीखने – चिल्लाने की आवाजें उठ रही थीं। उसके लिए पड़ोस में शराब पीकर पति द्वारा पिटती पत्नी का प्रतिकार और पति की गालियाँ कोई नयी नहीं थी। ऐसी घटनाएँ उसकी झोपड़ी में भी उठती हैं कभी–कभार। कोई ऐसे झगड़ों में दखल नहीं देता। सब कुछ अपने आप ही शान्त हो जाता है। उसे कब नींद लग गयी, पता ही नहीं चला। वह नींद में भी कुछ बुदबुदा रही थी। उसके चेहरे पर आज सुबह के लिए खौफ नहीं, एक जिज्ञासा थी। उसे याद नहीं पड़ता कभी जिज्ञासा लेकर वह सोई हो, पर आज उसके चेहरे पर जिज्ञासा के भाव थे। आँखें जितनी गहरी मुंदी थीं, दिमाग उतने ही रंगीन दृश्य बटोरने लगा था... सरसों का साग और मक्के की रोटी बड़े साहब को खूब पसन्द आयीं। सब खुश हुए, सभी उसी की चर्चा करने लगे। होटल में यह भोजन हमेशा के लिए चल निकला...और वह स्थायी तौर पर वहाँ रसोइये की हैसियत से रख ली गयी। बच्चों को खाने की किल्लत नहीं है। उसके आदमी ने बहुत मिन्नतों के बाद पीना छोड़ दिया है। बड़ा बेटा अब पास के नगरपालिका स्कूल में पढ़ने जाने लगा है। उसकी झोपड़ी अब कोई नहीं उजाड़ सकता। अब तो नल और बिजली के कनेक्शन भी आ गये हैं। देखते–देखते शहर में 'गोल्डन गेट' का पर्याय सरसों का साग हो गया है .....: उसे अपने इस हुनर पर गर्व हुआ ..... उसने करवट बदली और कानों ने पानी के लिए बर्तन टकराती आवाजें सुनीं।

हड़बड़ाकर उठी वह। देर तो नहीं हो गयी ? पर नहीं, अभी तो सूरज भी नहीं उगा है।

नहा–धोकर वह होटल पहुँच चुकी थी, पर होटल सुनसान था। कोई बात नहीं कथा मंजरी वह इन्तजार कर लेगी।

थोड़ी ही देर में पूरे होटल परिसर को पुलिस के हवाले कर दिया गया। दस बजे से ही भीड़ शुरू हो गयी थी। दरअसल लघु उद्योग पर राज्य स्तर की



एक मीटिंग मुख्यमंत्री की अध्यक्षता में ही होनी थी, पर किसी कारणवश वे नहीं आ रहे थे, लेकिन समय पर उनकी उपस्थिति से कई प्रकार के परिवर्तन करने पड़े। मुख्यमंत्री के आते ही पूरा होटल ज्यों चुम्बक की तरह उसकी ओर मुड़ गया। मुख्यमंत्री अपने पाइप से धुआँ उड़ाते किसी स्थानीय नेता से बात कर रहे थे। हॉल में गहमागहमी थी।

मुख्यमंत्री ने अपना भाषण दिया। कोई दस मिनट वे बोले होंगे। इसमें से पाँच मिनट स्थानीय नेताओं की प्रशंसा में निकल गये। पाँच मिनट से यही संकेत मिला कि लघु उद्योगों को प्रोत्साहन मिलना चाहिए। गरीबों का उत्थान होना चाहिए। फिर अचानक वे 'गैट' पर भी कुछ बोले, परन्तु इसके बारे में कुछ भी किसी को स्पष्ट नहीं हुआ।

छुटभैये नेता मुख्यमंत्री के साथ फोटो खिंचवाने में अपना सारा अस्तित्व ही दाँव पर लगा रहे थे। कोई समस्या के कागज उन्हें थमाता, कोई कान में कुछ कहने लगता.....कोई और करीब आने की कोशिश करता। मुख्यमंत्री सबके साथ भोजन लेने लगे। हालांकि उनके लिए अलग से व्यवस्था की गयी थी।

फिर अचानक उन्होंने होटल मैनेजर को बुलवाया। मैनेजर वहीं मंडरा रहा था। मुख्यमंत्री ने 'मक्के की रोटी और सरसों के साग' की भरपूर तारीफ की। यहाँ तक कहा कि बरसों बाद इतना मनपसन्द खाना बना है। मुख्य रसोइया 'थैंक्स' की रट लगा रहा था।

मुख्यमंत्री द्वारा प्लेट रखते ही सरकारी अधिकारियों की प्लेटें भी नीचे आने लगीं।

सब लोग मुस्तैदी से होटल के बाहर जमा हो गये थे। मुख्यमंत्री पाइप से धुआँ उगलते गोल्डन गेट से बाहर निकल चुके थे। आयोजकों को छोड़कर सभी जाने की तैयारी में थे।

मंगली की बड़ी इच्छा थी, बड़े साहब को देखने की, परन्तु वह नहीं देख पायी। हाँ, मुख्य रसोइया आया। बहुत खुश था। उसने मंगली को पचास रुपये दिये। जिस टोकरे में मंगली सरसों का साग लायी थी, वह टोकरी भी उसने भर दी थी– रोटियाँ, पुलाव और साग–भाजी, सब एक साथ मिल गया था। निकलते समय वह मुख्य रसोइये से मिलना चाहती थी, परन्तु वह जा चुका था।

वह भी अपना टोकरा उठाकर होटल से निकल पड़ी। पूर्ववत अनजान और अपरिचित।

घर पहुँची तो देखा–छह साल की बेटी उसका बेसब्री से इन्तजार कर रही है। टोकरा उतारकर झोंपड़ी में रखते ही वह सारे सने हुए भोजन से अपनी मनपसन्द चीजें निकाल रही थी। नन्हा बेटा भी टोकरी पकड़कर खड़ा था।

वह कहना चाह रही थी, "अरे, कुछ धीरज रखो," पर वह कुछ नहीं कह पायी। वही बैठ गयी। बच्चे दोनों टोकरी से चीजें निकालकर खा रहे थे। आज

Scanned by CamScanner

भरपूर था, इसलिए अलग निकालने की आवश्यकता उसने महसूस नहीं की। सिर्फ डर था, कहीं रात तक खराब न हो जायें। आज भी उसकी इच्छा नहीं थी खाने की, पर भूख लगी थी। उसने भी बाद में बच्चों के साथ उस टोकरे से खाया।

रात में उसने बच्चों को बताया था, "होटल में बहुत बड़े साहब आएंगे। उनके लिए खास भोजन बनेगा....।"

बच्चों का पेट भर गया था। वे टोकरी से अलग हो गये। घड़े से पानी पिया। एक गिलास पानी मंगली को देते हुए उसकी छह साल की बेटी ने पूछा, "माँ. साहब फिर कब आएंगे?"

●●

Scanned by CamScanner